मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥ १६॥
अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः॥ १७॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे॥ १८॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ १९॥

(शत्रुओंकी) शपथोंसे निर्मित या वरुणद्वारा पीछे लगायी गयी आपत्तिसे वे मुझे मुक्त करें। उसी प्रकार यमके पाशबन्धनसे और देवोंके विरुद्ध किये गये अपराधोंसे भी (वे मुझे) मुक्त करें॥ १६॥

स्वर्गलोकसे इधर-उधर नीचे पृथ्वीपर अवतरण करती हुई ओषधियोंने प्रतिज्ञा की कि जिस पुरुषको उसके जीवनकी अवधिमें हम स्वीकार करेंगी, वह कभी विनष्ट नहीं होगा॥ १७॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो बहुसंख्यक होकर शत प्रकारोंकी निपुणताओंसे परिपूर्ण हैं, उन सभी ओषधियोंमें तुम्हीं श्रेष्ठ हो और हमारी अभिलाषा सफल करने तथा हमारे हृदयको आनन्द देनेमें भी समर्थ हो॥ १८॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो ओषधियाँ पृथिवीके पृष्ठभागपर इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं तथा तुम सभी बृहस्पतिकी आज्ञा हो जानेपर इस (मेरे हाथमें ली गयी) ओषधिको अपना-अपना वीर्य समर्पित करो॥ १९॥

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम्॥ २०॥
याश्चेदमुपशृण्वान्ते याश्च दूरं परागताः।
सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ २१॥
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि॥ २२॥
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति॥ २३॥

[ऋक्० १०।९७]

(भूमिके उदरमेंसे) तुम्हें खोदकर निकालनेवाला मैं और जिसके लिये तुम्हें खोदकर निकालता हूँ वह रुग्ण पुरुष—इन दोनोंको किसी प्रकारका उपद्रव न होने दो। उसी प्रकार हमारे द्विपाद तथा चतुष्पाद प्राणी और अन्य जीव—ये सभी तुम्हारी कृपासे नीरोग रहें॥ २०॥

हे ओषधिलताओ! तुममेंसे जो मेरा यह वचन सुन रही हैं और जो यहाँसे दूर—अन्तरपर (अपने-अपने कार्यके निमित्त) गयी हैं, वे सभी और तुम एकत्र होकर (मेरे हाथमें ली हुई) ओषधिको अपना-अपना वीर्य समर्पित करो॥ २१॥

अपना राजा जो सोम, उसके पास सभी ओषधियाँ सहमत होकर प्रतिज्ञा करती हैं कि हे राजन्! जिसके लिये यह ब्राह्मण (कविराज) हमें अभिमन्त्रित करता है, उसे हम (व्याधियोंसे) पार करा देती हैं॥ २२॥

हे ओषधि! तुम सर्वश्रेष्ठ हो। सभी वृक्ष तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक हैं। (वैसे ही) जो हमें कष्ट देना चाहता है, वह हमारी आज्ञाका वशवर्ती (दास) बनकर रहे॥ २३॥

दीर्घायुष्यसूक्त

[अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखाका यह 'दीर्घायुष्यसूक्त' प्राणिमात्रके लिये समानरूपसे दीर्घायुप्रदायक है। इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषि पिप्पलादने देवों, ऋषियों, गन्धर्वों, लोकों, दिशाओं, ओषधियों तथा नदी, समुद्र आदिसे दीर्घ आयुकी कामना की है। यहाँ सूक्तको अनुवादसहित दिया जा रहा है—]

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः।
सं मायमग्निः सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ १॥

सं मा सिञ्चन्त्वादित्याः सं मा सिञ्चन्त्वग्नयः।
इन्द्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ २॥

सं मा सिञ्चन्त्वरुषः समर्का ऋषयश्च ये।
पूषा समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ३॥

सं मा सिञ्चन्तु गन्धर्वाप्सरसः सं मा सिञ्चन्तु देवताः।
भगः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ४॥

मरुद्गण, पूषा, बृहस्पति तथा यह अग्नि मुझे प्रजा एवं धनसे सींचें तथा मेरी आयुकी वृद्धि करें॥ १॥

आदित्य, अग्नि, इन्द्र मुझे प्रजा और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ २॥

अग्निकी ज्वालाएँ, प्राण, ऋषिगण और पूषा मुझे प्रजा और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ३॥

गन्धर्व एवं अप्सराएँ, देवता और भग मुझे प्रजा तथा धनसे सींचें और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ४॥

सं मा सिञ्चतु पृथिवी सं मा सिञ्चन्तु या दिवः।
अन्तरिक्षं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ५॥
सं मा सिञ्चन्तु प्रदिशः सं मा सिञ्चन्तु या दिशः।
आशाः समस्मान् सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ६॥
सं मा सिञ्चन्तु कृषयः सं मा सिञ्चन्त्वोषधीः।
सोमः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ७॥
सं मा सिञ्चन्तु नद्यः सं मा सिञ्चन्तु सिन्धवः।
समुद्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ८॥
सं मा सिञ्चन्त्वापः सं मा सिञ्चन्तु कृष्टयः।
सत्यं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे॥ ९॥ [अथर्व० पैप्पलाद]

पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष मुझे प्रजा एवं धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ५॥

दिशा-प्रदिशाएँ एवं ऊपर-नीचेके प्रदेश मुझे प्रजा और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ६॥

कृषिसे उत्पन्न धान्य, ओषधियाँ और सोम मुझे प्रजा एवं धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ७॥

नदी, सिन्धु (नद) और समुद्र मुझे प्रजा एवं धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ८॥

जल, कृष्ट ओषधियाँ तथा सत्य हम सबको प्रजा और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें॥ ९॥

ब्रह्मचारीसूक्त

[विद्याध्ययन तथा ज्ञानार्जन बिना ब्रह्मचर्य-व्रतके सफल नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य और ज्ञानका अभेद सम्बन्ध है। अध्यात्म-साधनाकी दृष्टिसे ब्रह्मचर्यकी जितनी महिमा है, उतनी ही लोक-जीवनके लिये भी उसकी आवश्यकता है। जो ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

अथर्ववेदके ११वें काण्डमें एक सूक्त पठित है, जो ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचारीकी महिमामें ही पर्यवसित है। इस सूक्तमें २६ मन्त्र हैं, जिनके द्रष्टा ऋषि ब्रह्मा हैं। इसमें ब्रह्मचारीकी महिमा तथा स्तुति करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचर्य धारण करनेवालेमें सभी देवता प्रतिष्ठित रहते हैं और ब्रह्मचारीके दिव्य प्रभावसे ही पृथिवी तथा द्युलोक स्थित रहते हैं। सबका कारणरूप जो सत्यज्ञानादि लक्षणात्मक ब्रह्म है, उससे सर्वप्रथम ब्रह्मचारीका प्राकट्य हुआ, इसलिये प्रथम जनन होनेसे ब्रह्मचारी सर्वश्रेष्ठ हैं। यहाँ सूक्तको मन्त्रोंके भावार्थसहित दिया जा रहा है—]

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं१ तपसा पिपर्ति॥ १॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः
षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति॥ २॥

ब्रह्मचारी पृथिवी और द्युलोक—इन दोनोंको पुनः-पुनः अनुकूल बनाता हुआ चलता है, इसलिये उस ब्रह्मचारीके अंदर सब देव अनुकूल मनके साथ रहते हैं। वह ब्रह्मचारी पृथिवी और द्युलोकका धारणकर्ता है और वह अपने तपसे अपने आचार्यको परिपूर्ण बनाता है॥ १॥

देव, पितर, गन्धर्व और देवजन—ये सब ब्रह्मचारीका अनुसरण करते हैं। तीन, तीस, तीन सौ और छः हजार देव हैं। इन सब देवोंका वह ब्रह्मचारी अपने तपसे पालन करता है॥ २॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ ३॥
इयं समित् पृथिवि द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥ ४॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ ५॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥ ६॥

ब्रह्मचारीको अपने पास करनेवाला आचार्य उसको अपने अन्दर करता है। उस ब्रह्मचारीको अपने उदरमें तीन रात्रितक रखता है, जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है, तब उसको देखनेके लिये सब विद्वान् सब प्रकारसे इकट्ठे होते हैं॥ ३॥

यह पृथिवी पहिली समिधा है, और दूसरी समिधा द्युलोक है। इस समिधासे वह ब्रह्मचारी अन्तरिक्षकी पूर्णता करता है। समिधा, मेखला, श्रम करनेका अभ्यास और तप इनके द्वारा वह ब्रह्मचारी सब लोकोंको पूर्ण करता है॥ ४॥

ज्ञानके पूर्व ब्रह्मचारी होता है। उष्णता धारण करता हुआ तपसे ऊपर उठता है। उस ब्रह्मचारीसे ब्रह्मसम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान प्रसिद्ध होता है तथा सब देव अमृतके साथ होते हैं॥ ५॥

तेजसे प्रकाशित कृष्णचर्म धारण करता हुआ, व्रतके अनुकूल आचरण करनेवाला और बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ धारण करनेवाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह लोगोंको इकट्ठा करता हुआ अर्थात् लोकसंग्रह करता हुआ और बारंबार उनको उत्साह देता है और पूर्वसे उत्तर समुद्रतक शीघ्र ही पहुँचता है॥ ६॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह॥ ७॥
आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति॥ ८॥
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा॥ ९॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्॥ १०॥
अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी॥ ११॥

जो ज्ञानामृतके केन्द्रस्थानमें गर्भरूप रहकर ब्रह्मचारी हुआ, वही ज्ञान, कर्म, जनता, प्रजापालक राजा और विशेष तेजस्वी परमेष्ठी परमात्माको प्रकट करता हुआ, अब इन्द्र बनकर निश्चयसे असुरोंका नाश करता है॥ ७॥

ये बड़े गम्भीर दोनों लोक पृथिवी और द्युलोक आचार्यने बनाये हैं। ब्रह्मचारी अपने तपसे उन दोनोंका रक्षण करता है। इसलिये उस ब्रह्मचारीके अन्दर सब देव अनुकूल मनके साथ रहते हैं॥ ८॥

पहले ब्रह्मचारीने इस विस्तृत भूमिकी तथा द्युलोककी भिक्षा प्राप्त की है। अब वह ब्रह्मचारी उनकी दो समिधाएँ करके उपासना करता है; क्योंकि उन दोनोंके बीचमें सब भुवन स्थापित हैं॥ ९॥

एक पास है और दूसरा द्युलोकके पृष्ठभागसे परे है। ये दोनों कोश ज्ञानीकी बुद्धिमें रखे हैं। उन दोनों कोशोंका संरक्षण ब्रह्मचारी अपने तपसे करता है तथा वही विद्वान् ब्रह्मचारी ब्रह्मज्ञान विस्तृत करता है, ज्ञान फैलाता है॥ १०॥

इधर एक है और इस पृथिवीसे दूर दूसरा है। ये दोनों अग्नि इन पृथिवी और द्युलोकके बीचमें मिलते हैं। उनकी बलवान् किरणें फैलती हैं। ब्रह्मचारी तपसे उन किरणोंका अधिष्ठाता होता है॥ ११॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः॥ १२॥
अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः॥ १३॥
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम्॥ १४॥
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः॥ १५॥
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी॥ १६॥

गर्जना करनेवाला भूरे और काले रंगसे युक्त बड़ा प्रभावशाली ब्रह्म अर्थात् उदकको साथ ले जानेवाला मेघ भूमिका योग्य पोषण करता है। तथा पहाड़ और भूमिपर जलकी वृष्टि करता है। उससे चारों दिशाएँ जीवित रहती हैं॥ १२॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल इनमें ब्रह्मचारी समिधा डालता है। उनके तेज पृथक्-पृथक् मेघोंमें संचार करते हैं। उनसे वृष्टि-जल, घी और पुरुषकी उत्पत्ति होती है॥ १३॥

आचार्य ही मृत्यु, वरुण, सोम, औषधि तथा पयरूप है। उसके जो सात्त्विक भाव हैं, वे मेघरूप हैं; क्योंकि उनके द्वारा ही वह स्वत्त्व रहा है॥ १४॥

एकत्व, सहवास, केवल शुद्ध तेज करता है। आचार्य वरुण बनकर प्रजापालकके विषयमें जो-जो चाहता है, उसको मित्र ब्रह्मचारी अपनी आत्मशक्तिसे देता है॥ १५॥

आचार्य ब्रह्मचारी होना चाहिये, प्रजापालक भी ब्रह्मचारी होना चाहिये। इस प्रकारका प्रजापति विशेष शोभता है। जो संयमी राजा होता है, वही इन्द्र कहलाता है॥ १६॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ १७॥
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥ १८॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत्॥ १९॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः॥ २०॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥ २१॥

ब्रह्मचर्यरूप तपके साधनसे राजा राष्ट्रका विशेष संरक्षण करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्यके साथ रहनेवाले ब्रह्मचारीकी ही इच्छा करता है॥ १७॥

कन्या ब्रह्मचर्य-पालन करनेके पश्चात् तरुण पतिको प्राप्त करती है। बैल और घोड़ा भी ब्रह्मचर्य-पालन करनेसे ही घास खाता है॥ १८॥

ब्रह्मचर्यरूप तपसे सब देवोंने मृत्युको दूर किया। इन्द्र ब्रह्मचर्यसे ही देवोंको तेज देता है॥ १९॥

औषधियाँ, वनस्पतियाँ, ऋतुओंके साथ गमन करनेवाला संवत्सर, अहोरात्र, भूत और भविष्य—ये सब ब्रह्मचारी हो गये हैं॥ २०॥

पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले अरण्य और ग्राममें उत्पन्न होनेवाले जो पक्षहीन पशु हैं तथा आकाशमें संचार करनेवाले जो पक्षी हैं, वे सब ब्रह्मचारी बने हैं॥ २१॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्॥ २२॥
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ २३॥
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥ २४॥
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम्॥ २५॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते॥ २६॥

[अथर्ववेद ११।५]

प्रजापति परमात्मासे उत्पन्न हुए सब ही पदार्थ पृथक्-पृथक् अपने अन्दर प्राणोंको धारण करते हैं। ब्रह्मचारीमें रहा हुआ ज्ञान उन सबका रक्षण करता है॥ २२॥

देवोंका यह उत्साह देनेवाला सबसे श्रेष्ठ तेज चलता है। उससे ब्रह्मसम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान हुआ है और अमर मनके साथ सब देव प्रकट हो गये॥ २३॥

चमकनेवाला ज्ञान ब्रह्मचारी धारण करता है। इसलिये उसमें सब देव रहते हैं। वह प्राण, अपान, व्यान, वाचा, मन, हृदय, ज्ञान और मेधा प्रकट करता है। इसलिये हे ब्रह्मचारी! हम सबमें चक्षु, श्रोत्र, यश, अन्न, वीर्य, रुधिर और पेट पुष्ट करो॥ २४-२५॥

ब्रह्मचारी उनके विषयमें योजना करता है। जलके समीप तप करता है। इस ज्ञानसमुद्रमें तप्त होनेवाला यह ब्रह्मचारी जब स्नातक हो जाता है, तब अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण वह इस पृथिवीपर बहुत चमकता है॥ २६॥

मन्युसूक्त

[ऋग्वेदके दशम मण्डलमें दो सूक्त (८३-८४वाँ) साथ-साथ पठित हैं, जो मन्युदेवतापरक होनेसे मन्युसूक्त कहलाते हैं। इन दोनों सूक्तोंके ऋषि मन्युस्तापस हैं। मन्युदेवताका अर्थ उत्साहशक्तिसम्पन्न देव किया गया है। इन सूक्तोंमें ऋषिने जीवकी उत्साहशक्तिको परमशक्तिसे जोड़ा है और प्रार्थना की है कि हे मन्युदेव! हम आपकी उपासनासे सब प्रकारकी सामर्थ्य प्राप्त करें और अपने काम-क्रोधादि शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर सकें। मन्यु देवतामें इन्द्र, वरुण आदि देवोंकी शक्ति प्रतिष्ठित बतायी गयी है और कहा गया है कि जैसे इन्द्रादि देव मन्युके सहयोगसे असुरोंपर विजय प्राप्त करते हैं, वैसे ही हम भी अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें। सूक्तोंका संक्षिप्त भावार्थ इस प्रकार है—]

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता॥ १॥
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥ २॥
अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः॥ ३॥

हे वज्रके समान कठोर और बाणके समान हिंसक उत्साह! जो तेरा सत्कार करता है, वह सब शत्रुको पराभव करनेका सामर्थ्य तथा बलका एक साथ पोषण करता है। तेरी सहायतासे तेरे बल बढ़ानेवाले, शत्रुका पराभव करनेवाले और महान् सामर्थ्यसे हम दास और आर्य शत्रुओंका पराभव करें॥ १॥

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु होता वरुण और जातवेद अग्नि है। जो सारी मानवी प्रजाएँ हैं, वे सब मन्युकी ही स्तुति करती हैं, अतः हे मन्यु! तपसे शक्तिमान् होकर हमारा संरक्षण कर॥ २॥

हे उत्साह! यहाँ आ। तू अपने बलसे महाबलवान् हो। द्वन्द्व सहन करनेकी शक्तिसे युक्त होकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर, तू शत्रुओंका संहारक, दुष्टोंका विनाशक और दुःखदायिओंका नाश करनेवाला है। तू हमारे लिये सब धन भरपूर भर दे॥ ३॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि॥ ४॥
अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि॥ ५॥
अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः॥ ६॥
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मे ऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव॥ ७॥

× × ×

हे मन्यु! तेरा सामर्थ्य शत्रुको हरानेवाला है, तू स्वयं अपनी शक्तिसे रहनेवाला है, तू स्वयं तेजस्वी है और शत्रुपर विजय प्राप्त करनेवाला है, शत्रुओंका पराभव करनेवाला बलवान् है, तू हमारी सेनाओंमें बल बढ़ा॥ ४॥

हे विशेष ज्ञानवान् मन्यु! महत्त्वसे युक्त ऐसे तेरे कर्मसे यज्ञमें भाग न देनेवाला होनेके कारण मैं पराभूत हुआ हूँ। उस तुझमें यज्ञ न करनेके कारण मैंने क्रोध उत्पन्न किया है। अतः इस मेरे शरीरमें बल बढ़ानेके लिये मेरे पास आ॥ ५॥

हे शत्रुका पराभव करनेवाले तथा सबके धारण करनेवाले उत्साह! यह मैं तेरा हूँ। मेरे पास आ जा, मेरे समीप रह। हे वज्रधारी! मेरे पास आकर रह, हमदोनों मिलकर शत्रुओंको मारें। निश्चयसे तू हमारा बन्धु है, यह जान॥ ६॥

हमारे पास आ। मेरा दाहिना हाथ होकर रह। इससे हम बहुत शत्रुओंको मारें। तेरे लिये मधुर रसके भागका मैं हवन करता हूँ। इस मधुर रसको हम दोनों एकान्तमें पहले पीयेंगे॥ ७॥

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः॥ १॥
अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व॥ २॥
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम्॥ ३॥
एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे॥ ४॥

हे उत्साह! तेरे साथ एक रथपर चढ़कर हर्षित और धैर्यवान् होकर हे सैनिको! तीक्ष्ण बाणवाले, आयुधोंको तीक्ष्ण करनेवाले तथा अग्निके समान तेजस्वी वीर आगे चलें॥ १॥

हे उत्साह! अग्निके समान तेजस्वी होकर शत्रुओंका पराभव कर। हे शत्रुओंका पराभव करनेवाले मन्यु! तुझे बुलाया गया है। हमारा सेनापति हो। शत्रुओंको मारकर धन हमें विभक्त करके दे, हमारा बल बढ़ाकर शत्रुओंको मार॥ २॥

हे उत्साह! हमारे लिये शत्रुका पराभव कर, शत्रुओंको कुचलकर, मारकर तथा उनका विनाश करता हुआ शत्रुओंको दूर कर, तेरा बल बड़ा है, सचमुच उसका कौन प्रतिबन्ध कर सकता है? तू अकेला ही सबको वशमें करनेवाला होकर अपने वशमें सबको करता है॥ ३॥

हे उत्साह! तू बहुतोंमें अकेला ही प्रशंसित हुआ है। युद्धके लिये प्रत्येक मनुष्यको तीक्ष्ण कर, तैयार कर। तेरेसे युक्त होनेसे हमारा तेज कम नहीं हो। हम अपनी विजयके लिये तेजस्वी घोषणा करें॥ ४॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ॥ ५॥
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम्।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि॥ ६॥
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम्॥ ७॥

[ऋग्वेद १०।८३-८४]

हे उत्साह! इन्द्रके समान विजय प्राप्त करनेवाला और स्तुतिके योग्य तू हमारा संरक्षक यहाँ हो। हे शत्रुको परास्त करनेवाले! तेरा प्रिय नाम हम लेते हैं, उस बल बढ़ानेवाले उत्साहको हम जानते हैं और जहाँसे वह उत्साह प्रकट होता है, वह भी हम जानते हैं॥ ५॥

हे वज्रके समान बलवान् और बाणके समान तीक्ष्ण उत्साह! शत्रुसे पराभव प्राप्त करनेके कारण उत्पन्न हुआ तू हे पराभूत मन्यो! अधिक उच्च सामर्थ्य धारण करता है, पराभव होनेपर तेरा सामर्थ्य बढ़ता है। हे बहुत स्तुति जिसकी होती है, ऐसे उत्साह! हमारे कर्मसे सन्तुष्ट होकर युद्ध शुरू होनेपर बुद्धिके साथ हमारे समीप आ॥ ६॥

वरुण और उत्साह उत्पन्न किया हुआ तथा संग्रह किया हुआ—दोनों प्रकारका धन हमें दें। पराजित हुए शत्रु अपने हृदयोंमें भय धारण करते हुए दूर भाग जायँ॥ ७॥

अभ्युदयसूक्त

[अथर्ववेदके उत्तरार्द्ध भागमें १७वें काण्डके रूपमें अभ्युदयसूक्त प्राप्त हैं। इसके ऋषि ब्रह्मा तथा देवता आदित्य हैं। इस सूक्तमें स्तोता अपने अभ्युदयहेतु परब्रह्म परमेश्वरसे दीर्घायु, सर्वप्रियता, सुमति, सुख, तेज, ज्ञान, बल, पवित्र वाणी, बलवान् प्राणशक्ति, सर्वत्र अनुकूलता आदि वरदानोंकी प्रार्थना कर रहा है। इसीलिये आत्म-अभ्युदयहेतु इस सूक्तका पाठ करनेकी परम्परा है। यह सूक्त यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम्॥ १॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम्॥ २॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्यविजयी, शत्रुको दबानेवाले, महाबलिष्ठ, बलसे दिग्विजय करनेवाले, अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, भूमि; इन्द्रियों और गौओंको जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यशवाले प्रभुकी मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं दीर्घायु होऊँ॥ १॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्यविजयी, शत्रुको दबानेवाले, महाबलिष्ठ, बलसे दिग्विजय करनेवाले, अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, भूमि; इन्द्रियों और गौओंको जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यशवाले प्रभुकी मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं देवोंका प्रिय बनूँ॥ २॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम्॥ ३॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम्॥ ४॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम्॥ ५॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्यविजयी, शत्रुको दबानेवाले, महाबलिष्ठ, बलसे दिग्विजय करनेवाले, अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, भूमि; इन्द्रियों और गौओंको जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यशवाले प्रभुकी मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं प्रजाओंका प्रिय होऊँ॥ ३॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्यविजयी, शत्रुको दबानेवाले, महाबलिष्ठ, बलसे दिग्विजय करनेवाले, अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, भूमि; इन्द्रियों और गौओंको जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यशवाले प्रभुकी मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं पशुओंका प्रिय होऊँ॥ ४॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्यविजयी, शत्रुको दबानेवाले, महाबलिष्ठ, बलसे दिग्विजय करनेवाले, अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, भूमि; इन्द्रियों और गौओंको जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यशवाले प्रभुकी मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं समान योग्यतावाले पुरुषोंको भी प्रिय बनूँ॥ ५॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ६॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा
सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ७॥
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो
मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ८॥

हे सूर्य! उदय होइये, उदयको प्राप्त होइये, अपने तेजसे उदित होकर मुझपर चारों ओरसे प्रकाशित होइये। मेरा द्वेष करनेवाला मेरे वशमें हो जाय, परंतु मैं द्वेष करनेवाले शत्रुके वश कभी न होऊँ। हे व्यापक ईश्वर! आपके ही वीर्य अनेक प्रकारके हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ६॥

हे सूर्य! उदयको प्राप्त होइये, उदयको प्राप्त होइये और अपने तेजसे मुझे प्रकाशित कीजिये। जिन प्राणियोंको मैं देखता हूँ और जिनको नहीं भी देखता—उनके विषयमें मुझे सुमतिवाला कीजिये। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ७॥

जलके अन्दर जो पाशवाले यहाँ आकर उपस्थित होते हैं, वे आपको न दबायें। निन्दाको त्यागकर द्युलोकपर आरूढ़ होइये और वह आप हमें सुखी कीजिये, हम आपकी सुमतिमें रहेंगे। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ८॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि
पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा
स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १० ॥
त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्वावित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो
मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ११ ॥

हे इन्द्र! आप हम सबको बड़े सौभाग्यके लिये न दबनेवाले प्रकाशोंसे सब ओरसे सुरक्षित रखें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ९॥

हे इन्द्र! आप कल्याणपूर्ण रक्षणोंके साथ हमें उत्तम कल्याण देनेवाले हों। द्युलोकपर आरूढ़ होकर प्रकाशको देते हुए सोमपान और कल्याणके लिये प्रस्थान करें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १०॥

हे इन्द्र! आप जगज्जेता और सर्वज्ञ हैं और हे इन्द्र! आप बहुत प्रशंसित हैं। हे इन्द्र! आप इस उत्तम प्रार्थनावाले स्तोत्रको प्रेरित करें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ११॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र
दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १२॥
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ
या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि।
ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न
इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १३॥
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि
षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १४॥

हे इन्द्र! आप द्युलोकमें और इस पृथ्वीपर दबे हुए नहीं हैं, अन्तरिक्षमें आपकी महिमाको कोई नहीं प्राप्त हो सकते। न दबनेवाले ज्ञानसे बढ़ते हुए द्युलोकमें आप हमें सुख प्रदान करें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १२॥

हे इन्द्र! जो आपका अंश जलमें है, जो पृथ्वीपर और जो अग्निके अन्दर है, और जो आपका अंश पवित्र करनेवाले प्रकाशपूर्ण द्युलोकमें है, हे इन्द्र! जिस तनूसे आप अन्तरिक्षमें व्यापते हैं, उस तनूसे हम सबको सुख प्रदान करें। हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १३॥

हे इन्द्र! आपकी मन्त्रोंसे स्तुति करते हुए प्रार्थना करनेवाले ऋषिगण सत्र नामक यागमें बैठते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १४॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं
स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १५॥
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्था-
मन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १६॥
पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङ् शस्तिमेषि सुदिने
बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १७॥

हे व्यापक देव! आप तीनों स्थानोंमें प्राप्त सहस्रधाराओंसे युक्त ज्ञानमय प्रकाशपूर्ण स्रोतको व्यापते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १५॥

हे देव! आप चारों दिशाओंकी रक्षा करते हैं। अपने तेजसे आकाशको प्रकाशित करते हैं। आप इन सब भुवनोंके अनुकूल होकर ठहरते हैं और जानते हुए सत्यके मार्गका अनुसरण करते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १६॥

हे देव! आप अपनी पाँचों शक्तियोंसे एक ओर तपते हैं और एकसे दूसरी ओर तपते हैं और उत्तम दिनमें अप्रशस्तताको दूर हटाते हुए चलते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १७॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति
जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १८॥
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्
भूतं ह भव्यं आहितं भव्यं भूते
प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १९॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम्॥ २०॥
रुचिरसि रोचोसि।
स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं
पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय॥ २१॥

हे देव! आप इन्द्र हैं, आप महेन्द्र हैं, आप लोक—प्रकाशपूर्ण हैं, आप प्रजापालक हैं, यज्ञ आपके लिये फैलाया जाता है और हवन करनेवाले आपके लिये आहुतियाँ देते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १८॥

हे देव! आप असत्में अर्थात् प्राकृतिक विश्वमें सत् अर्थात् आत्मा हैं, सत्में अर्थात् आत्मामें उत्पन्न हुए जगत् हैं, भूत होनेवालेमें आश्रित हैं, होनेवाले भूतमें प्रतिष्ठित हुए हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ १९॥

आप तेजस्वी हैं, आप प्रकाशमय हैं, जैसे आप तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं तेजसे प्रकाशित होऊँ॥ २०॥

आप प्रकाशमान हैं, आप देदीप्यमान् हैं, जैसे आप तेजसे तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं पशुओं और ज्ञानके तेजसे प्रकाशित होऊँ॥ २१॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ २२॥
अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ २३॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते
रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ २४॥
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय॥ २५॥

उदित होनेवालेको नमस्कार है, ऊपर आनेवालेके लिये नमस्कार है, उदयको प्राप्त हुएको नमस्कार है, विशेष प्रकाशमानको नमस्कार है, अपने तेजसे चमकनेवालेको नमस्कार है, उत्तम प्रकाशयुक्तको नमस्कार है॥ २२॥

अस्त होनेवालेको नमस्कार है, अस्तको जानेवालेको नमस्कार है, अस्त हुएको नमस्कार है, विशेष तेजस्वी, उत्तम प्रकाशमान और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवालेको नमस्कार है॥ २३॥

ये सूर्य सम्पूर्ण तेजके साथ उदित हैं। मेरे लिये मेरे शत्रुओंको वशमें करते हैं, परंतु मैं शत्रुओंके कभी वशमें न होऊँ। हे व्यापक देव! आपके ही ये सब पराक्रम हैं। आप हम सबको अनन्त रूपोंवाले पशुओंसे परिपूर्ण करें और परम आकाशमें विद्यमान अमृतमें मुझे धारण करें॥ २४॥

हे आदित्य! आप हमारे कल्याणके लिये सैकड़ों आरोंवाली नौकापर आरूढ हों। मुझे दिनके समय पारकर और रात्रिके समय भी साथ रहकर पार पहुँचा दें॥ २५॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय॥ २६॥
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य
ज्योतिषा वर्चसा च
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्त्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥ २७॥
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय॥ २८॥
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः॥ २९॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्त्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्॥ ३०॥

हे सूर्य! आप हमारे कल्याणके लिये नौकापर चढ़ें और हमें दिन तथा रात्रिके समय पार करें॥ २६॥

मैं प्रजापतिके ज्ञानरूप कवचसे आवृत होकर और सर्वदर्शक देवके तेज और बलसे युक्त होकर वृद्धावस्थातक वीर्यवान् हुआ विविध कर्मोंसे युक्त सहस्त्रायु—पूर्णायु होकर सर्वदर्शक देवके तेजसे और बलसे युक्त होकर जो दिव्य और मानवी बाण वधके लिये भेजे गये हों, वे मुझे न प्राप्त हों, उनसे मेरा वध न हो॥ २७-२८॥

सत्यके द्वारा रक्षित, सब ऋतुओंद्वारा रक्षित, भूत और भविष्यद्वारा सुरक्षित हुआ मैं यहाँ विचरूँ। पाप अथवा मृत्यु मुझे न प्राप्त हो। मैं अपनी वाणीको—अपने शब्दको पवित्र जीवनके अन्दर धारण करता हूँ। वाणीकी पवित्रता पवित्र-जीवनसे करता हूँ॥ २९॥

रक्षक अग्नि सब ओरसे मेरी रक्षा करे। उदय होनेवाला सूर्य मृत्युपाशोंको दूर करे। प्रकाशयुक्त उषाएँ और स्थिर पर्वत सहस्र बलवाले प्राण मेरे अन्दर फैलाये रखें॥ ३०॥

मधुसूक्त [मधुविद्या]

[अथर्ववेदके नवमकाण्डमें मधुविद्याविषयक एक मनोहर सूक्त प्राप्त है। इस सूक्तके ऋषि अथर्वा तथा देवता मधु एवं अश्विनीकुमार हैं। इस सूक्तमें विशेषरूपसे गोमहिमा वर्णित है। गोदुग्धरूपी अमृतरसके स्रोत गौ-को बहुत महत्त्वपूर्ण तथा देवताओंकी दिव्य शक्तियोंसे उत्पन्न बताया गया है। गोदुग्धको मनुष्योंके लिये सोमरसके तुल्य मूल्यवान् बताकर उससे तेजोवृद्धिकी प्रेरणा दी गयी है। इस सूक्तमें गो-के विश्वरूप अर्थात् समस्त प्रकृतिमें चतुर्दिक् व्याप्त मधुरताको अपने अन्दर आयत्त करनेकी उदात्त प्रार्थना है। इसका नियमित पाठ करनेसे व्यक्तित्वमें विशेष मधुरताका संचार होकर सद्गुणों तथा सौभाग्यमें वृद्धि होती है। यह सूक्त यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः॥ १॥
महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः।
यत एति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम्॥ २॥
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्या पृथङ्नरो बहुधा मीमांसामानाः।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः॥ ३॥

द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, समुद्रके जल, अग्नि और वायुसे मधुकशा (मधुर दूध देनेवाली गोमाता) उत्पन्न होती है। अमृतका धारण करनेवाली उस मधुकशाको सुपूजित करके सब प्रजाजन हृदयसे आनन्दित होते हैं॥ १॥

इसका दूध ही महान् विश्वरूप है और इसे ही समुद्रका तेज कहते हैं। जहाँसे यह मधुकशा शब्द करती हुई जाती है, वह प्राण है, वह सर्वत्र प्रविष्ट अमृत है॥ २॥

बहुत प्रकारसे पृथक्-पृथक् विचार करनेवाले लोग इस पृथ्वीपर इसका चरित्र अवलोकन करते हैं। यह मधुकशा अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है। यह मरुतोंकी उग्र पुत्री है॥ ३॥

मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु॥ ४॥
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो
विश्वा भुवना वि चष्टे॥ ५॥
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो
अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत॥ ६॥
स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत
यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ॥ ७॥

यह आदित्योंकी माता, वसुओंकी दुहिता, प्रजाओंका प्राण और यह अमृतका केन्द्र है, सुवर्णके समान वर्णवाली यह मधुकशा घृतका सिंचन करनेवाली है, यह मर्त्योंमें महान् तेजका संचार करती है॥ ४॥

इस मधुकी कशा (गौ)-को देवोंने बनाया है, उसका यह विश्वरूप गर्भ हुआ है। उस जन्मे हुए तरुणको वही माता पालती है, वह होते ही सब भुवनोंका निरीक्षण करता है॥ ५॥

कौन उसे जानता है, कौन उसका विचार करता है? इसके हृदयके पास जो सोमरससे भरपूर पूर्ण कलश विद्यमान है, इसमें वह उत्तम मेधावाला ब्रह्मा आनन्द करेगा॥ ६॥

वह उनको जानता है, वह उनका विचार करता है, जो इसके सहस्रधारायुक्त अक्षय स्तन हैं, वे अविचलित होते हुए बलवान् रसका दोहन करते हैं॥ ७॥

हिङ्कृरिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम्।
त्रीन् धर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः॥ ८ ॥
यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः॥ ९ ॥
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः॥ १० ॥
यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥ ११ ॥
यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः।
एवा मे इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥ १२ ॥

जो हिंकार करनेवाली, अन्न देनेवाली, उच्च स्वरसे पुकारनेवाली व्रतके स्थानको प्राप्त होती है। तीनों यज्ञोंको वशमें रखनेवाली सूर्यका मापन करती है और दूधकी धाराओंसे दूध देती है॥ ८॥

जो वर्षासे भरनेवाले बैल तेजस्वी शक्तिशाली जल जिस पान करनेवालीके पास पहुँचते हैं। तत्त्वज्ञानीको यथेच्छ बल देनेवाले अन्नकी वे वृष्टि करते हैं, वे वृष्टि कराते हैं॥ ९॥

हे प्रजापालक! तेरी वाणी गर्जना करनेवाला मेघ है, तू बलवान् होकर भूमिपर बलको फेंकता है। अग्नि और वायुसे मधुकशा उत्पन्न हुई है, यह मरुतोंकी उग्र पुत्री है॥ १०॥

जैसा सोमरस प्रातःसवन यज्ञमें अश्विनी देवोंको प्रिय होता है, हे अश्विदेवो! इस प्रकार मेरे आत्मामें तेज धारण करें॥ ११॥

जैसा सोमरस द्वितीयसवन-माध्यन्दिनसवन-यज्ञमें इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, हे इन्द्र और अग्नि! इस प्रकार मेरे आत्मामें तेज धारण करें॥ १२॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः।
एवा मे ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥ १३॥
मधु जनिषीय मधु वंशिषीय।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा॥ १४॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः॥ १५॥
यथा मधु मधुकृतः सम्भरन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥ १६॥
यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम्॥ १७॥

जैसा सोम तृतीयसवन-सायंसवन-यज्ञमें ऋभुओंको प्रिय होता है, हे ऋभुदेवो! इस प्रकार मेरे आत्मामें तेज धारण करें॥ १३॥

मिठास उत्पन्न करूँगा, मिठास प्राप्त करूँ। हे अग्ने! दूध लेकर मैं आ गया हूँ, उस मुझको तेजसे संयुक्त करें॥ १४॥

हे अग्ने! आप मुझे तेजसे, प्रजासे और आयुसे संयुक्त करें। मुझे सब देव जानें, ऋषियोंके साथ इन्द्र भी मुझे जानें॥ १५॥

जैसे मधुमक्खियाँ अपने मधुमें मधु संचित करती हैं, हे अश्विदेवो! इस प्रकार मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो, बढ़ता जाय॥ १६॥

जैसी मधुमक्षिकाएँ इस मधुको अपने पूर्वसंचित मधुमें संगृहीत करती हैं, इस प्रकार हे अश्विदेवो! मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो, बढ़े॥ १७॥

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि॥ १८॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु॥ १९॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा
शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति॥ २०॥

पृथिवी दण्डोन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा
विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः॥ २१॥

जैसा पहाड़ों और पर्वतोंपर तथा गौओं और अश्वोंमें जो मधुरता है, सिंचित होनेवाले वृष्टिजलमें उसमें जो मधु है; वह मुझमें हो॥ १८॥

हे शुभके पालक अश्विदेवो! मधुमक्खियोंके मधुसे मुझे युक्त करें; जिससे मैं लोगोंके प्रति तेजस्वी भाषण बोलूँ॥ १९॥

हे प्रजापालक! तू बलवान् है और तेरी वाणी मेघगर्जना है, तू भूमिपर और द्युलोकमें बलकी वर्षा करता है, उसपर सब पशुओंकी जीविका होती है और उससे वह अन्न और बलवर्धक रसकी पूर्णता करती है॥ २०॥

पृथिवी दण्ड है, अन्तरिक्ष मध्यभाग है, द्युलोक तन्तु हैं, बिजली उसके धागे हैं और सुवर्णमय बिन्दु हैं॥ २१॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च
व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम्॥ २२॥
मधुमान भवति मधुमदस्याहार्यं भवति।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद॥ २३॥
यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव
तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे
प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद॥ २४॥

[अथर्ववेद]

जो इस (मधु) कशाके सात मधु जानता है, वह मधुवाला होता है। ब्राह्मण और राजा, गाय और बैल, चावल और जौ तथा सातवाँ मधु है॥ २२॥

जो यह जानता है, वह मधुवाला होता है, उसका सब संग्रह मधुयुक्त होता है और मीठे लोकोंको प्राप्त करता है॥ २३॥

जो आकाशमें गर्जना होती है, प्रजापति ही वह प्रजाओंके लिये मानो प्रकट होता है। इसलिये दायें भागमें वस्त्र लेकर खड़ा होता हूँ, हे प्रजापालक ईश्वर! मेरा स्मरण रखो। जो यह जानता है, इसके अनुकूल प्रजाएँ होती हैं तथा इसको प्रजापति अनुकूलतापूर्वक स्मरणमें रखता है॥ २४॥

कृषिसूक्त

*[अथर्ववेदके तीसरे काण्डका १७वाँ सूक्त 'कृषिसूक्त' है। इस सूक्तके ऋषि 'विश्वामित्र' तथा देवता 'सीता' हैं। इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषिने कृषिको सौभाग्य बढ़ानेवाला बताया है। कृषि एक उत्तम उद्योग है। कृषिसे ही मानव-जातिका कल्याण होता है। प्राणोंके रक्षक अन्नकी उत्पत्ति कृषिसे ही होती है। ऋतुकी अनुकूलता, भूमिकी अवस्था तथा कठोर श्रम कृषि-कार्यके लिये आवश्यक है। हलसे जोती गयी भूमिको वृष्टिके देव इन्द्र उत्तम वर्षासे सींचें (**'इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु'**) तथा सूर्य अपनी उत्तम किरणोंसे उसकी रक्षा करें (**'तां पूषाभि रक्षतु'**)—यही कामना ऋषिने की है। यह सूक्त भावानुवादसहित प्रस्तुत है—]*

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ॥ १॥
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्॥ २॥
लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम्॥ ३॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥ ४॥

देवोंमें विश्वास करनेवाले विज्ञजन विशेष सुख प्राप्त करनेके लिये (भूमिको) हलोंसे जोतते हैं और (बैलोंके कन्धोंपर रखे जानेवाले) जुओंको अलग करके रखते हैं॥ १॥

जुओंको फैलाकर हलोंसे जोड़ो और (भूमिको) जोतो। अच्छी प्रकार भूमि तैयार करके उसमें बीज बोओ। इससे अन्नकी उपज होगी, खूब धान्य पैदा होगा और पकनेके बाद (अन्न) प्राप्त होगा॥ २॥

हलमें लोहेका कठोर फाल लगा हो, पकड़नेके लिये लकड़ीकी मूठ हो, ताकि हल चलाते समय आराम रहे। यह हल ही गौ-बैल, भेड़-बकरी, घोड़ा-घोड़ी, स्त्री-पुरुष आदिको उत्तम घास और धान्यादि देकर पुष्ट करता है॥ ३॥

इन्द्र वर्षाद्वारा हलसे जोती गयी भूमिको सींचें और धान्यके पोषक सूर्य उसकी रक्षा करें। यह भूमि हमें प्रतिवर्ष उत्तम रससे युक्त धान्य देती रहे॥ ४॥

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै॥ ५॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥ ६॥
शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्॥ ७॥
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥ ८॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना॥ ९॥

[अथर्व० ३। १७]

हलके सुन्दर फाल भूमिकी खुदाई करें, किसान बैलोंके पीछे चलें। हमारे हवनसे प्रसन्न हुए वायु एवं सूर्य इस कृषिसे उत्तम फलवाली रसयुक्त ओषधियाँ दें॥ ५॥

बैल सुखसे रहें, सब मनुष्य आनन्दित हों, उत्तम हल चलाकर आनन्दसे कृषि की जाय। रस्सियाँ जहाँ जैसी बाँधनी चाहिये, वैसी बाँधी जायँ और आवश्यकता होनेपर चाबुक ऊपर उठाया जाय॥ ६॥

वायु और सूर्य मेरे हवनको स्वीकार करें और जो जल आकाशमण्डलमें है, उसकी वृष्टिसे इस पृथिवीको सिंचित करें॥ ७॥

भूमि भाग्य देनेवाली है, इसलिये हम इसका आदर करते हैं। यह भूमि हमें उत्तम धान्य देती रहे॥ ८॥

जब भूमि घी और शहदसे योग्य रीतिसे सिंचित होती है और जल, वायु आदि देवोंकी अनुकूलता उसको मिलती है, तब वह हमें उत्तम मधुर रसयुक्त धान्य और फल देती रहे॥ ९॥

गृहमहिमासूक्त

[अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखामें वर्णित इस 'गृहमहिमासूक्त'की अतिशय महत्ता एवं लोकोपयोगिता है। इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषिने गृहमें निवास करनेवालोंके लिये सुख, ऐश्वर्य तथा समृद्धिसम्पन्नताकी कामना की है। यहाँ यह सूक्त अनुवादके साथ दिया जा रहा है—]

गृहानैमि मनसा मोदमान ऊर्जं बिभ्रद् वः सुमतिः सुमेधाः।
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण गृहाणां पश्यन्नय उत्तरामि॥ १॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः।
पूर्णा वामस्य तिष्ठन्तस्ते नो जानन्तु जानतः॥ २॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीतन॥ ३॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयाम यान् ते नो जानन्त्वायतः॥ ४॥

ऊर्ज (शक्ति)-को पुष्ट करता हुआ, मतिमान् और मेधावी मैं मुदित मनसे गृहमें आता हूँ। कल्याणकारी तथा मैत्रीभावसे सम्पन्न चक्षुसे इन गृहोंको देखता हुआ, इनमें जो रस है, उसका ग्रहण करता हूँ॥ १॥

ये घर सुखके देनेवाले हैं, धान्यसे भरपूर हैं, घी-दूधसे सम्पन्न हैं। सब प्रकारके सौन्दर्यसे युक्त ये घर हमारे साथ घनिष्ठता प्राप्त करें और हम इन्हें अच्छी तरह समझें॥ २॥

जिन घरोंमें रहनेवाले परस्पर मधुर और शिष्ट सम्भाषण करते हैं, जिनमें सब तरहका सौभाग्य निवास करता है, जो प्रीतिभोजोंसे संयुक्त हैं, जिनमें सब हँसी-खुशीसे रहते हैं, जहाँ कोई न भूखा है, न प्यासा है, उन घरोंमें कहींसे भयका संचार न हो॥ ३॥

प्रवासमें रहते हुए हमें जिनका बराबर ध्यान आया करता है, जिनमें सहृदयताकी खान है, उन घरोंका हम आवाहन करते हैं, वे बाहरसे आये हुए हमको जानें॥ ४॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥ ५॥
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसन्मुदः।
अरिष्टाः सर्वपूरुषा गृहा नः सन्तु सर्वदा॥ ६॥

[अथर्ववेद पैप्पलाद]

हमारे इन घरोंमें दुधार गौएँ हैं; इनमें भेड़, बकरी आदि पशु भी प्रचुर संख्यामें हैं। अन्नको अमृततुल्य स्वादिष्ट बनानेवाले रस भी यहाँ हैं॥ ५॥

बहुत धनवाले मित्र इन घरोंमें आते हैं, हँसी-खुशीके साथ हमारे साथ स्वादिष्ट भोजनोंमें सम्मिलित होते हैं। हे हमारे गृहो! तुममें बसनेवाले सब प्राणी सदा अरिष्ट अर्थात् रोगरहित और अक्षीण रहें, किसी प्रकार उनका ह्रास न हो॥ ६॥

विवाहसूक्त [सोमसूर्यासूक्त]

*[ऋग्वेदके दशम मण्डलका ८५वाँ सूक्त विवाहसूक्त कहलाता है। यह सोमसूर्यासूक्त भी कहलाता है। यह सूक्त बड़ा है और इसमें ४७ ऋचाएँ पठित हैं। इन ऋचाओंकी द्रष्टा ऋषिका सावित्री सूर्या हैं। इस सूक्तमें सूर्य, चन्द्र आदि देवोंकी भी स्तुतियाँ हैं। विवाहादि संस्कारोंमें इसके कई मन्त्रोंका पाठ होता है। सिन्दूरदानके एक मन्त्रमें वधूको आशीर्वाद देते हुए कहा गया है कि यह सौभाग्यशालिनी वधू अत्यन्त कल्याणकारिणी और मंगल प्रदान करनेवाली है, सभी इसे अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद प्रदान करें और इसका दर्शन करें '**सुमङ्गलीरियं वधू०**'। एक दूसरे मन्त्रमें कहा गया है कि हे वर और वधू! तुम दोनों सदा साथ-साथ रहो, कभी परस्पर पृथक् मत होओ (**मा वि यौष्टम्**)। दोनों सम्पूर्ण आयु प्राप्त करो और अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ आमोद-प्रमोद करो। इस प्रकार यह विवाहसूक्त बड़ा ही उपयोगी तथा बड़े महत्त्वका है। यहाँ सूक्तके मन्त्रोंका भावार्थ संक्षेपमें दिया जा रहा है—]*

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः॥ १॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥ २॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन॥ ३॥

देवोंमें सत्यरूप ब्रह्माने पृथिवीको आकाशमें धारण किया है। सूर्यने द्युलोकको स्तम्भित किया है, धारण किया है। यज्ञके द्वारा देव रहते हैं। द्युलोकमें सोम ऊपर अवस्थित है॥ १॥

सोमसे ही इन्द्रादि देव बलवान् होते हैं। सोमके द्वारा ही पृथिवी महान् होती है और इन नक्षत्रोंके बीचमें सोम रखा गया है॥ २॥

जब सोमरूपी वनस्पति ओषधिको पीसते हैं, उस समय लोग मानते हैं कि उन्होंने सोमपान कर लिया। परंतु जिस सोमको ब्रह्म जाननेवाले ज्ञानीलोग जानते हैं, उसको दूसरा कोई भी अयाज्ञिक खा नहीं सकता है॥ ३॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः।
ग्रावणामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः॥ ४॥
यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥ ५॥
रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम्॥ ६॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम्॥ ७॥
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वरा ऽग्निरासीत् पुरोगवः॥ ८॥

हे सोम! तू गुप्त विधि-विधानोंसे रक्षित, बार्हतगणों (स्वान, भ्राज, अंघार्य आदि)-से संरक्षित है। तू पीसनेवाले पत्थरोंका शब्द सुनता ही रहता है। तुझे पृथिवीका कोई भी सामान्य जन नहीं खा सकता॥ ४॥

हे सोमदेव! जब लोग तेरा ओषधिरूपमें पान करते हैं, उस समय तू बार-बार पिया जाता है। वायु तुझ सोमकी रक्षा करता है, जिस प्रकार महीने वर्षकी रक्षा करते हैं॥ ५॥

रैभी (कुछ वेदमन्त्र) विवाहके अनन्तर विवाहिताकी सखी हुई थीं। मनुष्योंसे गायी हुई ऋचाएँ उसकी दासी हुई थीं। सूर्याका आच्छादन-वस्त्र अति सुन्दर था और वह गाथासे सुशोभित हुआ था॥ ६॥

जिस समय सूर्या पतिके गृहमें गयी, उस समय उत्तम विचार ही चादर था। काजलयुक्त नेत्र थे। आकाश और पृथिवी ही उसके खजाने थे॥ ७॥

स्तोत्र ही सूर्याके रथ-चक्रके डंडे थे, कुरीर नामक छन्दसे रथ सुशोभित किया था, सूर्याके वर अश्विनीकुमार थे और अग्रगामी अग्नि था॥ ८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादददात्॥ ९॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम्॥ १०॥
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः॥ ११॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम्॥ १२॥
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥ १३॥

सोम वधूकी कामना करनेवाला था, दोनों अश्विनीकुमार उसके पति स्वीकृत किये गये। जब पतिकी इच्छा करनेवाली सूर्याको सविताने मनःपूर्वक प्रदान किया॥ ९॥

जब सूर्या अपने पतिके गृहमें गयी, तब उसका रथ उसका मन ही था, और आकाश ऊपरकी छत थी। सूर्य और चन्द्र उसके रथवाहक हुए॥ १०॥

हे सूर्ये देवि! तेरे मनरूप रथके ऋक् और सामके द्वारा वर्णित सूर्य-चन्द्ररूप बैल शान्त रहते हुए एक-दूसरेके सहायक होकर चलते हैं। वे दोनों कान मनरूप रथके दो चक्र हुए। रथका चलनेका मार्ग आकाश हुआ॥ ११॥

जाते हुए तेरे रथके दोनों चक्र कान हुए। रथका धुरा वायु था। पतिके गृहको जानेवाली सूर्या मनोमय रथपर आरूढ हुई॥ १२॥

पतिगृहमें जाते समय पिता सूर्यद्वारा प्रेमसे दिया हुआ सूर्याका गौ आदि धन, पहले ही भेजा गया था। मघा नक्षत्रमें विदाईमें दी गयी गायोंको डंडेसे हाँका जाता है और फाल्गुनी नक्षत्रमें कन्याको पतिके घर पहुँचाया जाता है॥ १३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्रः पितरावृणीत पूषा॥ १४॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः॥ १५॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः॥ १६॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः॥ १७॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः॥ १८॥

हे अश्विद्वय! जिस समय तीन चक्रके रथसे सूर्यके विवाहकी बात पूछनेके लिये तुम आये थे, उस समय सारे देवोंने तुम्हारे कार्यको अनुमति दी थी और तुम्हारे पुत्र पूषाने तुम्हें वरण किया था॥ १४॥

हे अश्विद्वय! जब तुम सूर्यासे मिलनेके लिये सविताके पास आये थे, तब तुम्हारे रथका एक चक्र कहाँ था? और तुम परस्पर दान-आदान करनेके लिये तैयार थे, तब तुम कहाँ रहते थे?॥ १५॥

हे सूर्ये! तेरे रथके सूर्य-चन्द्रात्मक दो चक्र जो समयानुसार चलनेवाले प्रख्यात हैं, वे ब्राह्मण जानते हैं और एक तीसरा संवत्सरात्मक चक्र जो गुप्त था, उसको विद्वान् ही जानते हैं॥ १६॥

सूर्या, देव, मित्र, वरुण और जो भी सब प्राणिमात्रके शुभचिन्तक हितप्रद हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ॥ १७॥

ये दोनों शिशु—सूर्य और चन्द्र अपने तेजसे पूर्व-पश्चिममें विचरण करते हैं और ये क्रीडा करते हुए यज्ञमें जाते हैं। इन दोनोंमेंसे एक—सूर्य सर्व भुवनोंको देखता है और दूसरा—चन्द्र ऋतुओं, दो मासरूप कालविभागोंका निर्माण करता हुआ बार-बार उत्पन्न होता है॥ १८॥

नवोनवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः॥ १९॥
सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व॥ २०॥
उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि॥ २१॥
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं१ सं जायां पत्या सृज॥ २२॥

यह चन्द्र प्रतिदिन पुनः उत्पन्न होकर नया-नया ही होता है। वह दिनोंका सूचक कृष्णपक्षकी रातोंमें प्रातःकालोंके आगे ही आता है, अथवा दिनोंका सूचक सूर्य प्रतिदिन नया होकर प्रातःकाल सामने आता है। वह आता हुआ देवोंको यज्ञहवि भाग देता है। चन्द्रमा आकर आनन्द देता हुआ दीर्घायु करता है॥ १९॥

हे सूर्ये! अच्छे किंशुक और शाल्मलिकी लकड़ीसे बने हुए नाना रूपवाले, सोनेके रंगवाले, उत्तम वेष्टनोंसे युक्त, उत्तम चक्रोंसे युक्त इस रथपर चढ़ो और पतिके लिये अमृतके लोकको सुखकारी बनाओ॥ २०॥

हे विश्वावसो! इस स्थानसे उठो; क्योंकि यह स्त्री पतिवाली हो गयी है। मैं विश्वावसुकी नमस्कारों और वाणियोंसे स्तुति करता हूँ। तुम पितृकुलमें रहनेवाली, दूसरी युवा लड़कीकी इच्छा करो, वह तुम्हारा भाग है, जन्मसे उसको जानो॥ २१॥

हे विश्वावसो! इस स्थानसे उठो; तुम्हारी नमस्कारसे स्तुति करते हैं और तुम दूसरी बृहद् नितम्बिनीकी इच्छा करो और उस स्त्रीको पतिके साथ संयुक्त करो॥ २२॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः॥ २३॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके ऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि॥ २४॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति॥ २५॥
पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥ २६॥

सब मार्ग काँटोंसे रहित और सरल हों, जिनसे हमारे मित्र कन्याके घरके प्रति पहुँचते हैं और अर्यमा तथा भगदेव हमें वहाँ अच्छी तरह ले जायँ। हे देवो! ये पत्नी और पति अच्छे मिथुन—जोड़े हों। वर तथा वधूके घर जानेके मार्ग कंटकरहित और सरल हों। देवगण इस जोड़ेको सुखी और समृद्ध करें॥ २३॥

तुझे मैं वरुणके बन्धनोंसे मुक्त करता हूँ, जिससे तुझे सेवा करनेयोग्य सविताने बाँधा था। सदाचारीके घरमें और सत्कर्म-कर्ताके लोकमें हिंसाके अयोग्य तुझको पतिके साथ स्थापित करता हूँ॥ २४॥

यहाँ (पितृकुल)-से तुझे मुक्त करता हूँ, वहाँ (पतिकुल)-से नहीं। वहाँसे तुझे अच्छी प्रकार बाँधता हूँ। हे दाता इन्द्र! जिससे यह वधू उत्तम पुत्रवाली और उत्तम भाग्यसे युक्त हो॥ २५॥

पूषा तुझे यहाँसे हाथ पकड़कर चलायें, आगे अश्विदेव तुझे रथमें बिठलाकर पहुँचायें। अपने पतिके घरको जा। वहाँ तू घरकी स्वामिनी और सबको वशमें रखनेवाली हो। वहाँ तू उत्तम विवेकका भाषण कर॥ २६॥

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्वाऽधा जिव्री विदथमा वदाथः॥ २७॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते॥ २८॥
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम्॥ २९॥
अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते॥ ३०॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः॥ ३१॥

यहाँ तेरी सन्तानके साथ प्रियकी वृद्धि हो, और तू इस घरमें गृहस्थधर्मके लिये जागती रह। इस पतिके साथ अपने शरीरको संयुक्त कर और वृद्ध होनेपर तुम दोनों उत्तम उपदेश करो॥ २७॥

जब यह नीली और लाल बनती है अर्थात् क्रोधयुक्त होती है, तब इसकी विनाशक इच्छा बढ़ती है, इसकी जातिके मनुष्य बढ़ते हैं और पति बन्धनमें बाँधा जाता है॥ २८॥

शरीरके मलसे मलिन वस्त्रका त्याग करो। प्रायश्चित्तार्थ ब्राह्मणोंको धन दो। यह कृत्या चली गयी है और अब पत्नी होकर पतिमें सम्मिलित हो रही है॥ २९॥

यदि पति वधूके वस्त्रसे अपने शरीरको ढकनेको चाहे, तो पतिका शरीर श्रीरहित, रोगादिसे दूषित हो जाता है। यह वधू पापयुक्त शरीरसे दुःख और कष्टसे पीड़ा देनेवाली होती है॥ ३०॥

वधूसे अथवा वधूके सम्बन्धियोंसे जो व्याधियाँ तेजःपुंज वरके शरीरको प्राप्त होती हैं, यज्ञार्ह इन्द्रादि देव उनको उनके स्थानपर फिर लौटा दें, जहाँसे वे पुनः आ जाती हैं॥ ३१॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः॥ ३२॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन॥ ३३॥
तृष्टमेतत् कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति॥ ३४॥
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम्।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति॥ ३५॥
गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥ ३६॥

जो विरोधी शत्रुरूप होकर पति-पत्नी दोनोंके पास आते हैं, वे न प्राप्त हों। वे सुगम मार्गोंसे दुर्गम देशमें जायँ। शत्रुलोग दूर भाग जायँ॥ ३२॥

यह वधू शोभन कल्याणवाली है। समस्त आशीर्वादकर्ता आयें और इसे देखें। इस विवाहिताको उत्तम सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद देकर अनन्तर सब अपने घर चले जायँ॥ ३३॥

यह वस्त्र दाहक, अग्राह्य, मलिन और विषके समान घातक है। यह व्यवहारके योग्य नहीं है। जो ब्राह्मण सूर्याको अच्छी प्रकार जानता है, वह ही वधूके वस्त्रको प्राप्त कर सकता है॥ ३४॥

आशसन (झालर), विशसन (शिरोभूषण) और अधिविकर्तन (तीन भागवाला वस्त्र) इस प्रकार के वस्त्र पहनी हुई सूर्याके जो रूप होते हैं, उन्हें तू देख। उनको वेदज्ञ ब्राह्मण ही शुद्ध करता है॥ ३५॥

हे वधू! तेरा हाथ मैं सौभाग्यवृद्धिके लिये ग्रहण करता हूँ। जिस कारणसे तू मुझ पतिके साथ वृद्धावस्थापर्यन्त पहुँचना, भग, अर्यमा, सविता और पुरंधिः देवोंने तुझे मुझे गृहस्थधर्मका पालन करनेके लिये प्रदान किया है॥ ३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्॥ ३७॥
तुभ्यमग्रे पर्यवहन् त्सूर्यां वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ ३८॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥ ३९॥
सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ४०॥
सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥ ४१॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥ ४२॥

हे पूषा! जिस स्त्रीके गर्भमें मनुष्य रेतरूप बीज बोते हैं, अर्थात् रेतःस्खलन करते हैं, जो हम पुरुषोंकी कामना करती हुई दोनों जाँघोंका आश्रय लेती है और जिसमें हम कामवश होकर अपनी प्रजनन-इन्द्रियका प्रवेश कराते हैं। अत्यन्त कल्याणमय गुणोंवाली उसको तू प्रेरित कर॥ ३७॥

हे अग्नि! गन्धर्वोंने तुझे प्रथम दहेज आदि सहित सूर्याको दिया और तुमने दहेजके साथ उसे सोमको अर्पण किया और तू हम पतिको उत्तम सन्तानसहित स्त्री प्रदान कर, अर्थात् हम विवाहितोंको उत्तम सन्तानसे सम्पन्न कर॥ ३८॥

अग्निने पुनः दीर्घ आयु और तेज, कान्तिसहित पत्नीको दिया। इसका जो पति है, वह दीर्घायु होकर सौ वर्षतक जिये॥ ३९॥

सोमने सबसे प्रथम तुम्हें पत्नीरूपसे प्राप्त किया, उसके अनन्तर गन्धर्वने प्राप्त किया। तीसरा तेरा पति अग्नि है। चौथा मनुष्यवंशज तेरा पति है॥ ४०॥

सोमने उस स्त्रीको गन्धर्वको दिया। गन्धर्वने अग्निको दिया। अनन्तर इसको अग्नि ऐश्वर्य और सन्ततिके साथ मुझे प्रदान करता है॥ ४१॥

हे वर और वधू! तुम दोनों यहीं रहो। कभी परस्पर पृथक् नहीं होओ। सम्पूर्ण आयुको विशेष रूपसे प्राप्त करो। अपने गृहमें रहकर पुत्र-पौत्रोंके साथ आमोद, आनन्द और उसके साथ खेलते हुए रहो॥ ४२॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मङ्गली: पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ४३॥
अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्य: सुमना: सुवर्चा:।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ४४॥
इमां त्वमिन्द्र मीढ्व: सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि॥ ४५॥
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ ४६॥
समञ्जन्तु विश्वे देवा: समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥ ४७॥

[ऋग्वेद १०। ४५]

प्रजापति हमें उत्तम सन्तति दें। अर्यमा वृद्धावस्थापर्यन्त हमारी रक्षा करें। मंगलमयी होकर पतिके गृहमें प्रवेश कर। तू हमारे आप्त बन्धुओंके लिये तथा पशुओंके लिये सुखकारिणी हो॥ ४३॥

हे वधू! तुम शान्त दृष्टिवाली और पतिको दु:ख न देनेवाली होओ। पशुओंके लिये हितकारी, उत्तम शुभ विचारयुक्त मनवाली, तेजस्वी, वीरप्रसविनी और देवोंकी भक्ति करनेवाली सुखकारी होओ। हमारे द्विपादोंके लिये और चतुष्पादोंके लिये कल्याणमयी होओ॥ ४४॥

हे इन्द्र! तू इसको उत्तम पुत्रोंसे युक्त और सौभाग्यशाली कर। इसको दस पुत्र प्रदान कर और पतिको लेकर इसे ग्यारह व्यक्तिवाली बना॥ ४५॥

हे वधू! तू श्वसुर, सास, ननद और देवरोंकी साम्राज्ञी—महारानीके सदृश होओ, सबके ऊपर प्रभुत्व कर॥ ४६॥

समस्त देव हमारे दोनोंके हृदयोंको परस्पर मिला दें। जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनोंको संयुक्त करें॥ ४७॥

आध्यात्मिक सूक्त

नासदीयसूक्त

*[ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १२९वें सूक्तके १ से ७ तकके मन्त्र 'नासदीयसूक्त' के नामसे सुविदित हैं। इस सूक्तके द्रष्टा ऋषि प्रजापति परमेष्ठी, देवता भाववृत्त तथा छन्द त्रिष्टुप् हैं। इस सूक्तमें ऋषिने बताया है कि सृष्टिका निर्माण कब, कहाँ और किससे हुआ। यह बड़ा ही रहस्यपूर्ण और देवताओंके लिये भी अगम्य है। सृष्टिके प्रारम्भमें द्वन्द्वात्मकता-विहीन सर्वत्र एक ही तत्त्व व्याप्त था। इसके बाद सलिलने चतुर्दिक् इसे घेर लिया और सृष्टि-निर्माणकी प्रक्रिया हुई। सृष्टिका निर्माण इसी 'मनके रेत' से होना था। सूक्तद्रष्टा ऋषिने अपने हृदयाकाशमें देखा कि सत्का सम्बन्ध असत्से है। यही सृष्टि-निर्माणकी कड़ी **'सोऽकामयत्', 'तदैक्षत'** है। इसीके एक अंश 'रेतोधा' और दूसरे अंश 'महिमा' में परस्पर आकर्षण हुआ। इसके बाद स्वाभाविक सृष्टि सुविदित ही है। यहाँ भावानुवादके साथ सूक्तको दिया जा रहा है—]*

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥ १॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥ २॥

प्रलयकालमें न सत् था और न असत् था। उस समय न लोक था और आकाशसे दूर जो कुछ है, वह भी नहीं था। उस समय सबका आवरण क्या था? कहाँ किसका आश्रय था? अगाध और गम्भीर जल क्या था? अर्थात् यह सब अनिश्चित ही था॥ १॥

उस समय न मृत्यु थी, न अमृत था। सूर्य और चन्द्रमाके अभावमें रात और दिन भी नहीं थे। वायुसे रहित उस दशामें एक अकेला ब्रह्म ही अपनी शक्तिके साथ अनुप्राणित हो रहा था, उससे परे या भिन्न कोई और वस्तु नहीं थी॥ २॥

तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ ३॥
कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥ ४॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३ दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥ ५॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव॥ ६॥

सृष्टिसे पूर्व प्रलयकालमें अन्धकार व्याप्त था, सब कुछ अन्धकारसे आच्छादित था। अज्ञातावस्थामें यह सब जल-ही-जल था और जो था वह चारों ओर होनेवाले सत्-असत्-भावसे आच्छादित था। सब अविद्यासे आच्छादित तमसे एकाकार था और वह एक ब्रह्म तपके प्रभावसे हुआ॥ ३॥

सृष्टिके पहले ईश्वरके मनमें सृष्टिकी रचनाका संकल्प हुआ, इच्छा पैदा हुई; क्योंकि पुरानी कर्मराशिका संचय जो बीजरूपमें था, सृष्टिका उपादान कारणभूत हुआ। यह बीजरूपी सत्पदार्थ ब्रह्मरूपी असत्से पैदा हुआ॥ ४॥

सूर्यकी किरणोंके समान सृष्टि-बीजको धारण करनेवाले पुरुष (भोक्ता) हुए और भोग्य वस्तुएँ उत्पन्न हुईं। इन भोक्ता और भोग्यकी किरणें ऊपर-नीचे, आड़ी-तिरछी फैलीं। इनमें चारों तरफ भोग्यशक्ति निकृष्ट थी और भोक्तृशक्ति उत्कृष्ट थी॥ ५॥

यह सृष्टि किस विधिसे और किस उपादानसे प्रकट हुई? यह कौन जानता है? कौन बताये? किसकी दृष्टि वहाँ पहुँच सकती है? क्योंकि सभी इस सृष्टिके बाद ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिये यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई? यह कौन जानता है?॥ ६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥ ७॥

[ऋग्वेद १०।१२९]

इस सृष्टिका अतिशय विस्तार जिससे पैदा हुआ, वह इसे धारण किये है, रखे है या बिना किसी आधारके ही है। हे विद्वन्! यह सब कुछ वही जानता है, जो परम आकाशमें रहनेवाला इस सृष्टिका नियन्ता है या शायद परमाकाशमें स्थित वह भी नहीं जानता॥ ७॥

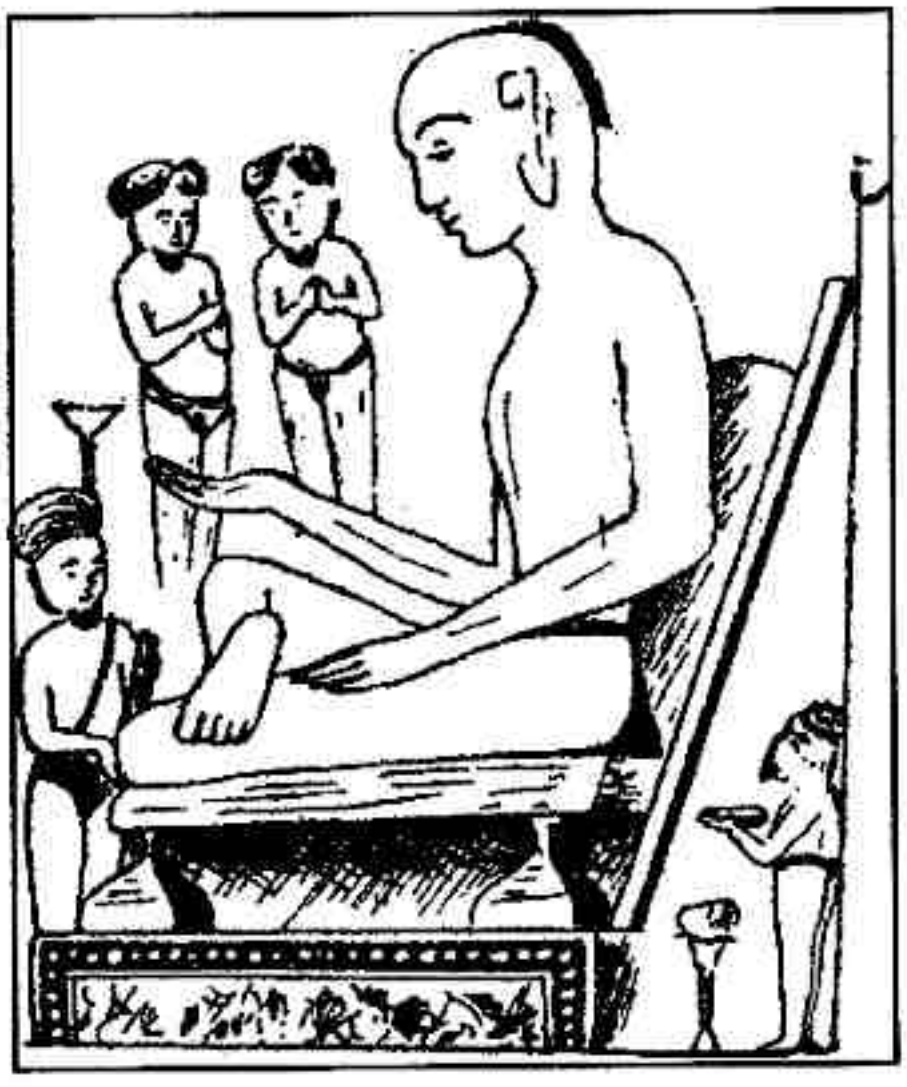

छात्रोंको श्रुतिपाठ कराते हुए गुरुदेव

भुवनेश्वर (उड़ीसा)-स्थित राजारानी मन्दिरमें शिलापट्टपर उत्कीर्ण दृश्यका रेखाचित्र

(समय लगभग १००० ई०)

हिरण्यगर्भसूक्त

[ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १२१वें सूक्तको 'हिरण्यगर्भसूक्त' कहते हैं। इसके ऋषि प्रजापतिपुत्र हिरण्यगर्भ, देवता 'क' शब्दाभिधेय प्रजापति एवं छन्द त्रिष्टुप् है। ऋग्वेदमें विभिन्न देवताओंके नामोंके अन्तर्गत जो एकात्मभावना व्याप्त है, उसीको दार्शनिक शब्दोंमें सृष्टि-उत्पत्तिके प्रसंगमें यह सूक्त व्यक्त करता है। हिरण्यको अग्निका रेत कहते हैं। हिरण्यगर्भ अर्थात् सुवर्णगर्भ सृष्टिके आदिमें स्वयं प्रकट होनेवाला बृहदाकार-अण्डाकार तत्त्व है। यह सृष्टिका आदि अग्नितत्त्व माना गया है। महासलिलमें प्रकट हुए हिरण्यगर्भकी तीन गतियाँ बतायी गयी हैं—१-आपः (सलिल)-में ऊर्मियोंके उत्पन्न होनेसे समेषण हुआ। २-आगे बढ़नेकी क्रिया (प्रसर्पण) हुई। ३-उसने तैरते हुए चारों ओर बढ़ने (परिप्लवन)-की क्रिया की। इसके बाद यह हिरण्यगर्भ दो भागोंमें विभक्त होकर पृथ्वी और द्युलोक बना। यह हिरण्यगर्भ ही सृष्टिका मूल है। मन्त्रद्रष्टा ऋषिने सृष्टिके आदिमें स्थित इसी हिरण्यगर्भके प्रति जिज्ञासा प्रकट की है—जो सृष्टिके पहले विद्यमान था। यहाँ सूक्तको भावार्थसहित दिया जा रहा है—]

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २॥

सूर्यके समान तेज जिनके भीतर है, वे परमात्मा सृष्टिकी उत्पत्तिसे पहले वर्तमान थे और वे ही परमात्मा जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। वे ही परमात्मा जो इस भूमि और द्युलोकके धारणकर्ता हैं, उन्हीं ईश्वरके लिये हम हविका समर्पण करते हैं॥ १॥

जिन परमात्माकी महान् सामर्थ्यसे ये बर्फसे ढके पर्वत बने हैं, जिनकी शक्तिसे ये विशाल समुद्र निर्मित हुए हैं और जिनकी सामर्थ्यसे बाहुओंके समान ये दिशाएँ-उपदिशाएँ फैली हुई हैं, उन सुखस्वरूप प्रजाके पालनकर्ता दिव्यगुणोंसे सबल परमात्माके लिये हम हवि समर्पण करते हैं॥ २॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ६॥

जो परमात्मा अपनी महान् सामर्थ्यसे जगत्के समस्त प्राणियों एवं चराचर जगत्के एकमात्र स्वामी हुए तथा जो इन दो पैरवाले मनुष्य, पक्षी और चार पैरवाले जानवरोंके भी स्वामी हैं, उन आनन्दस्वरूप परमेश्वरके लिये हम भक्तिपूर्वक हवि अर्पित करते हैं॥ ३॥

जो परमात्मा आत्मशक्ति और शारीरिक बलके प्रदाता हैं, जिनकी उत्तम शिक्षाओंका देवगण पालन करते हैं, जिनके आश्रयसे मोक्षसुख प्राप्त होता है तथा जिनकी भक्ति और आश्रय न करना मृत्युके समान है, उन देवको हम हवि अर्पित करते हैं॥ ४॥

जिन्होंने द्युलोकको तेजस्वी तथा पृथ्वीको कठोर बनाया, जिन्होंने प्रकाशको स्थिर किया, जिन्होंने सुख और आनन्दको प्रदान किया, जो अन्तरिक्षमें लोकोंका निर्माण करते हैं, उन आनन्दस्वरूप परमात्माके लिये हम हवि अर्पित करते हैं। उनके स्थानपर अन्य किसीकी पूजा करनेयोग्य नहीं है॥ ५॥

बलसे स्थिर होते हुए परंतु वास्तवमें चलायमान, गतिमान्, काँपनेवाले अथवा तेजस्वी, द्युलोक और पृथ्वीलोक मननशक्तिसे जिनको देखते हैं और जिनमें उदित होता हुआ सूर्य विशेषरूपसे प्रकाशित होता है, उन आनन्दमय परमात्माके लिये हम हवि अर्पित करते हैं॥ ६॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ७ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ८ ॥
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ९ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १० ॥

[ऋग्वेद १०।१२१]

निश्चय ही गर्भको धारण करके अग्निको प्रकट करता हुआ अपार जलसमूह जब संसारमें प्रकट हुआ, तब उस गर्भसे देवताओंका एक प्राणरूप आत्मा प्रकट हुआ। उस जलसे उत्पन्न देवके लिये हम हवि समर्पित करते हैं॥ ७॥

जिन परमात्माने सृष्टि—जलका सृजन किया और जिनके द्वारा ही जलमें सर्जन शक्ति पैदा हुई तथा सृष्टिरूपी यज्ञ उत्पन्न हुआ अर्थात् यह यज्ञमय सृष्टि उत्पन्न हुई, उन्हीं एकमात्र सर्वनियन्ताको हम हविद्वारा अपनी अर्चना अर्पित करते हैं॥ ८॥

इस पृथ्वी और नभको उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर हमें दुःख न दें। जिन परमात्माने आह्लादकारी जलको उत्पन्न किया, उन्हीं देवको हम हविद्वारा अपनी पूजा समर्पित करते हैं॥ ९॥

हे प्रजाके पालनकर्ता! आप सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं। दूसरा कोई इनमें व्याप्त नहीं है। अन्य किसीसे अपनी कामनाओंके लिये प्रार्थना करना उपयुक्त नहीं है। जिस कामनासे हम आहुति प्रदान कर रहे हैं, वह पूरी हो और हम (दान-निमित्त) प्राप्त धनोंके स्वामी हो जायँ॥ १०॥

सौमनस्यसूक्त [संज्ञानसूक्त (क)]

[ऋग्वेदके १०वें मण्डलका यह १९१ वाँ सूक्त ऋग्वेदका अन्तिम सूक्त है। इस सूक्तके ऋषि आङ्गिरस, पहले मन्त्रके देवता अग्नि तथा शेष तीनों मन्त्रोंके संज्ञान देवता हैं। पहले, दूसरे तथा चौथे मन्त्रोंका छन्द अनुष्टुप् तथा तीसरे मन्त्रका छन्द त्रिष्टुप् है। प्रस्तुत सूक्तमें सबकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले अग्निदेवकी प्रार्थना आपसी मतभेदोंको भुलाकर सुसंगठित होनेके लिये की गयी है। संज्ञानका तात्पर्य समानता तथा मानसिक और बौद्धिक एकता है। समभावकी प्रेरणा देनेवाले इस सूक्तमें सबकी गति, विचार और मन-बुद्धिमें सामञ्जस्यकी प्रेरणा दी गयी है। यहाँ सूक्त अनुवादसहित प्रस्तुत है—]

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ २॥
समानो मन्त्रःसमितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ४॥

[ऋग्वेद १०।१९१]

समस्त सुखोंको प्रदान करनेवाले हे अग्नि! आप सबमें व्यापक अन्तर्यामी ईश्वर हैं। आप यज्ञवेदीपर प्रदीप्त किये जाते हैं। हमें विविध प्रकारके ऐश्वर्योंको प्रदान करें॥ १॥

[हे धर्मनिरत विद्वानो!] आप परस्पर एक होकर रहें, परस्पर मिलकर प्रेमसे वार्तालाप करें। समानमन होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार श्रेष्ठजन एकमत होकर ज्ञानार्जन करते हुए ईश्वरकी उपासना करते हैं, उसी प्रकार आप भी एकमत होकर—विरोध त्याग करके अपना काम करें॥ २॥

हम सबकी प्रार्थना एकसमान हो, भेद-भावसे रहित परस्पर मिलकर रहें, अन्तःकरण—मन-चित्त-विचार समान हों। मैं सबके हितके लिये समान मन्त्रोंको अभिमन्त्रित करके हवि प्रदान करता हूँ॥ ३॥

तुम सबके संकल्प एकसमान हों, तुम्हारे हृदय एकसमान हों और मन एक-समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्णरूपसे संगठित हो॥ ४॥

संज्ञानसूक्त (ख)

[यह अथर्ववेदके तीसरे काण्डका तीसवाँ सूक्त है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि अथर्वा तथा देवता चन्द्रमा हैं। यह सूक्त सरल, काव्यमय भाषामें सामान्य शिष्टाचार और जीवनके मूल सिद्धान्तोंको निरूपित करता है। सभी लोगोंके बीच समभाव तथा परस्पर सौहार्द उत्पन्न हो, यह भावना इसमें व्यक्त की गयी है। समाजके मूल आधार परिवारके सभी सम्बन्धी परस्पर मिल-जुलकर रहें, मधुर वाणी बोलें, सबके मन एकसमान हों, सब एक-दूसरेके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हों। ऐसी भावनासे परिपूर्ण इस प्रेरक सूक्तके पाठसे सामाजिक एकता एवं सद्भाव उत्पन्न होता है। भावार्थसहित सूक्त यहाँ दिया जा रहा है—]

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ १॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥ २॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ ३॥

आप सबके मध्यमें विद्वेषको हटाकर मैं सहृदयता, संमनस्कताका प्रचार करता हूँ। जिस प्रकार गौ अपने बछड़ेसे प्रेम करती है, उसी प्रकार आप सब एक-दूसरेसे प्रेम करें॥ १॥

पुत्र पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पतिसे शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलनेवाली हो॥ २॥

भाई-भाई आपसमें द्वेष न करें। बहन बहनके साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें॥ ३॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ ४॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥ ५॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ ६॥
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥ ७॥

[अथर्ववेद ३। ३०]

जिस प्रेमसे देवगण एक-दूसरेसे पृथक् नहीं होते और न आपसमें द्वेष करते हैं, उसी ज्ञानको तुम्हारे परिवारमें स्थापित करता हूँ। सब पुरुषोंमें परस्पर मेल हो॥ ४॥

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदयसे एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक-दूसरेको प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझेको खींच ले चलो। परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्तजनोंसे सदा मिले हुए रहो॥ ५॥

अन्न और जलकी सामग्री समान हो। एक ही बन्धनसे सबको युक्त करता हूँ। अतः उसी प्रकार साथ मिलकर अग्निकी परिचर्या करो, जिस प्रकार रथकी नाभिके चारों ओर अरे लगे रहते हैं॥ ६॥

समान गतिवाले आप सबको सममनस्क बनाता हूँ, जिससे आप पारस्परिक प्रेमसे समान-भावोंके साथ एक अग्रणीका अनुसरण करें। देव जिस प्रकार समान-चित्तसे अमृतकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सायं और प्रातः आप सबकी उत्तम समिति हो॥ ७॥

ऋतसूक्त

[ऋग्वेदके १०वें मण्डलका १९०वाँ सूक्त 'ऋतसूक्त' है। यह अघमर्षणसूक्त भी कहलाता है। इसके ऋषि माधुच्छन्द अघमर्षण, देवता भाववृत्त तथा छन्द अनुष्टुप् है। यह सूक्त सृष्टिविषयक है। ऋषिने परमपिता परमेश्वरकी स्तुति करते हुए कहा है कि महान् तपसे सर्वप्रथम ऋत और सत्य प्रकट हुए। परम ब्रह्मकी महिमासे क्रमशः प्रलयरूपी रात्रि, समुद्र, संवत्सर, दिन-रात, सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक और पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। इस सूक्तका प्रयोग नित्य संध्या करते समय भी अघमर्षण (पापनाश)-हेतु किया जाता है। यहाँ इस सूक्तका अनुवाद भी दिया जा रहा है—]

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ १॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः॥ ३॥

[ऋग्वेद १०।१९०]

परमात्माकी उग्र तपस्यासे (सर्वप्रथम) ऋत और सत्य पैदा हुए। इसके बाद प्रलयरूपी रात्रि और जलसे परिपूर्ण महासमुद्र उत्पन्न हुआ॥ १॥

जलसे भरे समुद्रकी उत्पत्तिके बाद परमपिताने संवत्सरका निर्माण किया; फिर निमेषोन्मेषमात्रमें ही जगत्को वशमें करनेवाले परमपिताने दिन और रात बनाया॥ २॥

इसके बाद सबको धारण करनेवाले परमात्माने सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक, पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष और सुखमय स्वर्ग तथा भूतल एवं आकाशका पहलेके ही समान सृजन किया॥ ३॥

श्रद्धासूक्त

[ऋग्वेदके दशम मण्डलके १५१वें सूक्तको 'श्रद्धासूक्त' कहते हैं। इसकी ऋषिका श्रद्धा कामायनी, देवता श्रद्धा तथा छन्द अनुष्टुप् है। प्रस्तुत सूक्तमें श्रद्धाकी महिमा वर्णित है। अग्नि, इन्द्र, वरुण-जैसे बड़े देवताओं तथा अन्य छोटे देवोंमें भेद नहीं है—यह इस सूक्तमें बतलाया गया है। सभी यज्ञ-कर्म, पूजा-पाठ आदिमें श्रद्धाकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। ऋषिने इस सूक्तमें श्रद्धाका आवाहन देवीके रूपमें करते हुए कहा है कि 'वे हमारे हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न करें।' यहाँ श्रद्धासूक्तको भावानुवादके साथ दिया जा रहा है—]

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥ १॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि॥ २॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि॥ ३॥

श्रद्धासे ही अग्निहोत्रकी अग्नि प्रदीप्त होती है। श्रद्धासे ही हविकी आहुति यज्ञमें दी जाती है। धन-ऐश्वर्यमें सर्वोपरि श्रद्धाकी हम स्तुति करते हैं॥ १॥

हे श्रद्धे! दाताके लिये हितकर अभीष्ट फलको दो। हे श्रद्धे! दान देनेकी जो इच्छा करता है, उसका भी प्रिय करो। भोगैश्वर्य प्राप्त करनेके इच्छुकोंके भी प्रार्थित फलको प्रदान करो॥ २॥

जिस प्रकार देवोंने असुरोंको परास्त करनेके लिये यह निश्चय किया कि 'इन असुरोंको नष्ट करना ही चाहिये', उसी प्रकार हमारे श्रद्धालु ये जो याज्ञिक एवं भोगार्थी हैं, इनके लिये भी इच्छित भोगोंको प्रदान करो॥ ३॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य३ याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥ ४॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५॥

[ऋग्वेद १०। १५१]

बलवान् वायुसे रक्षण प्राप्त करके देव और मनुष्य श्रद्धाकी उपासना करते हैं, वे अन्तःकरणमें संकल्पसे ही श्रद्धाकी उपासना करते हैं। श्रद्धासे धन प्राप्त होता है॥ ४॥

हम प्रातःकालमें श्रद्धाकी प्रार्थना करते हैं। मध्याह्नमें श्रद्धाकी उपासना करते हैं। सूर्यास्तके समयमें भी श्रद्धाकी उपासना करते हैं। हे श्रद्धादेवि! इस संसारमें हमें श्रद्धावान् बनाइये॥ ५॥

शिवसंकल्पसूक्त (कल्याणसूक्त)

[मनुष्यशरीरमें प्रत्येक इन्द्रियका अपना विशिष्ट महत्त्व है, परंतु मनका महत्त्व सर्वोपरि है; क्योंकि मन सभीको नियन्त्रित करनेवाला, विलक्षण शक्तिसम्पन्न तथा सर्वाधिक प्रभावशाली है। इसकी गति सर्वत्र है, सभी कर्मेन्द्रियाँ-ज्ञानेन्द्रियाँ, सुख-दुःख मनके ही अधीन हैं। स्पष्ट है कि व्यक्तिका अभ्युदय मनके शुभ संकल्पयुक्त होनेपर निर्भर करता है, यही प्रार्थना मन्त्रद्रष्टा ऋषिने इस सूक्तमें व्यक्त की है। यह सूक्त शुक्लयजुर्वेदके ३४वें अध्यायमें पठित है। इसमें छः मन्त्र हैं। यहाँ सूक्तको भावानुवादके साथ दिया जा रहा है—]

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ १॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ३॥

जो जागते हुए पुरुषका [मन] दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है; जो भूत, भविष्य, वर्तमान, संनिकृष्ट एवं व्यवहित पदार्थोंका एकमात्र ज्ञाता है तथा जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥ १॥

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मोंका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥ २॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजाके हृदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्थूल शरीरकी मृत्यु होनेपर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥ ३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४॥
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्ँमिश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ५॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ६॥

[शुक्लयजुर्वेद अ० ३४]

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं तथा जिसके द्वारा सात होतावाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥ ४॥

जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें अरोंके समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥ ५॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ोंका संचालन और रासके द्वारा घोड़ोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥ ६॥

प्राणसूक्त

*[अथर्ववेदके ११वें काण्डका चौथा सूक्त प्राणसूक्तके नामसे विख्यात है, इसमें २६ मन्त्र हैं। इसमें प्राणको परमात्माके रूपमें निरूपितकर उनकी स्तुति की गयी है। इस सूक्तके द्रष्टा ऋषि भार्गव वैदर्भि प्राणकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि जिसके अधीन यह सम्पूर्ण जगत् है, जो प्राण सबका ईश्वर तथा समस्त संसारमें व्याप्त है, उसके लिये मेरा नमस्कार है—'**प्राणाय नमः**'। इस सूक्तमें प्राणको जीवनी शक्ति तथा समस्त ओषधियोंमें प्रतिष्ठित बताया गया है। प्राणके रूपमें ही वृष्टि होती है और ओषधियोंमें अग्नीषोमात्मकरूपसे यह प्राण अधिष्ठित रहता है। प्राण, अपान, मातरिश्वा तथा वायुरूप जो भी प्रवहमान वायु हैं, वे सभी परमात्मरूप प्राणके ही व्यक्ताव्यक्त रूप हैं। यहाँ सूक्तको अनुवादसहित दिया जा रहा है—]*

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते॥ २॥
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते॥ ३॥

जिसके आधीन यह सब जगत् है, उस प्राणके लिये मेरा नमस्कार है। वह प्राण सबका ईश्वर है और उसमें सब जगत् रह रहा है॥ १॥

हे प्राण! गर्जना करनेवाले तुझको नमस्कार है, मेघोंमें नाद करनेवाले तुझको नमस्कार है। हे प्राण! चमकनेवाले तुझको नमस्कार है और हे प्राण! वृष्टि करनेवाले तुझको नमस्कार है॥ २॥

हे प्राण! जब तू मेघोंके द्वारा औषधियोंके सम्मुख बड़ी गर्जना करता है, तब औषधियाँ तेजस्वी होती हैं, गर्भधारण करती हैं और बहुत प्रकारसे विस्तारको प्राप्त होती हैं॥ ३॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि॥ ४॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति॥ ५॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः॥ ६॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥ ७॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः॥ ८॥

हे प्राण! वर्षा ऋतु आते ही जब तू औषधियोंके उद्देश्यसे गर्जन करने लगता है, तब सब जगत् तथा जो कुछ इस पृथ्वीपर है, आनन्दित होता है॥ ४॥

जब प्राण वृष्टिद्वारा इस बड़ी भूमिपर वर्षा करता है, तब पशु हर्षित होते हैं और समझते हैं कि निश्चय ही अब हम सबकी वृद्धि होगी॥ ५॥

औषधियोंपर वृष्टि होनेके पश्चात् औषधियाँ प्राणके साथ भाषण करती हैं कि हे प्राण! तूने हमारी आयु बढ़ा दी है और हम सबको सुगन्धियुत किया है॥ ६॥

आगमन करनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है, गमन करनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है। हे प्राण! स्थिर रहनेवाले और बैठनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है॥ ७॥

हे प्राण! जीवनका कार्य करनेवाले तुझे नमस्कार है, अपानका कार्य करनेवाले तेरे लिये नमस्कार है। आगे बढ़नेवाले और पीछे हटनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है, सब कार्य करनेवाले तेरे लिये यह मेरा नमस्कार है॥ ८॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे॥ ९ ॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न॥ १०॥
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥ ११॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्॥ १२॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते॥ १३॥

हे प्राण! जो मेरा प्रिय शरीर है, और जो तेरे प्रिय भाग हैं तथा जो तेरा औषधि है, वह दीर्घजीवनके लिये हमको दे॥ ९॥

जिस प्रकार प्रिय पुत्रके साथ पिता रहता है, उस प्रकार सब प्रजाओंके साथ प्राण रहता है, जो प्राण धारण करते हैं और जो नहीं धारण करते, उन सबका प्राण ही ईश्वर है॥ १०॥

प्राण ही मृत्यु है और प्राण ही जीवनकी शक्ति है। इसलिये सब देव प्राणकी उपासना करते हैं; क्योंकि सत्यवादीको प्राण ही उत्तम लोकमें पहुँचाता है॥ ११॥

प्राण विशेष तेजस्वी है और प्राण ही सबका प्रेरक है, इसलिये प्राणकी ही सब उपासना करते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और प्रजापति भी प्राण ही हैं॥ १२॥

प्राण और अपान ही चावल और जौ हैं। बैल ही मुख्य प्राण है। जौमें प्राण रखा है और चावल अपानको कहते हैं॥ १३॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः॥ १४॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १५॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥ १६॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः॥ १७॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे॥ १८॥

जीव गर्भके अन्दर प्राण और अपानके व्यापार करता है। हे प्राण! जब तू प्रेरणा करता है, तब वह जीव पुनः उत्पन्न होता है॥ १४॥

प्राणको मातरिश्वा कहते हैं, और वायुका नाम ही प्राण है। भूत, भविष्य और सब कुछ वर्तमान कालमें जो है, वह सब प्राणमें ही रहता है॥ १५॥

हे प्राण! जबतक तू प्रेरणा करता है, तबतक ही आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियाँ फल देती हैं॥ १६॥

जब प्राण इस बड़ी पृथ्वीपर वृष्टि करता है, सब औषधियाँ और वनस्पतियाँ बढ़ जाती हैं॥ १७॥

हे प्राण! जो मनुष्य तेरी इस शक्तिको जानता है और जिस मनुष्यमें तू प्रतिष्ठित होता है, उस मनुष्यके लिये उस उत्तम लोकमें सब ही सत्कारका समर्पण करते हैं॥ १८॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः॥ १९॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः॥ २०॥
एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री
नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन॥ २१॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ २२॥

हे प्राण! जिस प्रकार ये सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं कि जो उत्तम यशस्वी है और तेरा सामर्थ्य सुनता है, उसके लिये भी बलि देते हैं॥ १९॥

इन्द्रियादिकोंमें जो व्यापक प्राण है, वह ही गर्भके अन्दर चलता है। जो पहले हुआ था, वह ही फिर उत्पन्न होता है। जो पहले हुआ था, वह ही अब होता है और आगे भी होगा। पिता अपनी सब शक्तियोंके साथ पुत्रमें प्रविष्ट होता है॥ २०॥

जलसे हंस ऊपर उठता हुआ एक पैरको नहीं उठाता। हे प्रिय! यदि वह उस पैरको उठायेगा। तो आज, कल, रात्रि, दिन, प्रकाश और अँधेरा कुछ भी नहीं होगा॥ २१॥

आठ चक्रोंसे युक्त, अक्षरोंसे व्यक्त जिसका है, ऐसा यह प्राणचक्र आगे और पीछे चलता है। आधे भागसे सब भुवनोंको उत्पन्न करके जो इसका आधा भाग शेष रहा है, वह किसका चिह्न है?॥ २२॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते॥ २३॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु॥ २४॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥ २५॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि॥ २६॥

[अथर्ववेद ११।४]

हे प्राण! सबको जन्म देनेवाले और इस सब हलचल करनेवाले जगत्का जो ईश है, सब अन्योंमें शीघ्र गतिवाले तेरे लिये नमन है॥ २३॥

जन्म धारण करनेवाले और हलचल करनेवाले सबका जो स्वामी है, वह धैर्यमय प्राण आलस्यरहित होकर आत्मशक्तिसे युक्त होता हुआ प्राण मेरे पास सदा रहे॥ २४॥

सबके सो जानेपर भी यह प्राण खड़ा रहकर जागता है, कभी तिरछा गिरता नहीं। सबके सो जानेपर इसका सोना किसीने भी सुना नहीं है॥ २५॥

हे प्राण! मेरेसे पृथक् न होओ। मेरेसे दूर न होओ। पानीके गर्भके समान हे प्राण! जीवनके लिये अपने अन्दर तुझको बाँधता हूँ॥ २६॥

अभयप्राप्तिसूक्त

[जीवनमें सर्वाधिक प्रिय वस्तु अपने प्राण ही होते हैं और सबसे बड़ा भय भी प्राणोंसे रहित होनेका—मृत्युका ही होता है। इसी दृष्टिसे मन्त्रद्रष्टा ऋषिने सब प्रकारसे भयमुक्त रहनेके लिये प्राणोंकी प्रार्थना की है और कहा है—जिस प्रकार द्यौ, पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्रमा आदि सभी भयमुक्त रहते हैं—कभी क्षीण नहीं होते, उसी प्रकार हे प्राणो! तुम भी निर्भय हो जाओ और अक्षुण्ण बने रहो। यह सूक्त हमें निर्भय तथा साहसी बननेकी शिक्षा देता है। अथर्ववेदके द्वितीय काण्डके इस पन्द्रहवें सूक्तमें तेरह मन्त्र हैं। इस सूक्तके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता प्राण-अपान आदि हैं और छन्द त्रिवृद्गायत्री है। जीवनमें प्राणोंकी रक्षा तथा उत्साहसम्वर्धन आदि प्रसंगोंके लिये यह सूक्त बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यहाँ यह सूक्त भावानुवादके साथ प्रस्तुत है—]

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ १॥
यथा वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ २॥
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ३॥

जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ १॥

जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ २॥

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ३॥

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ४॥
यथा धेनुश्चानड्वांश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ५॥
यथा मित्रश्च वरुणश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ६॥
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ७॥
यथेन्द्रश्चेन्द्रियं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ८॥
यथा वीरश्च वीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ९॥

जिस प्रकार दिन और रात्रि न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ४॥

जिस प्रकार धेनु और वृषभ न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ५॥

जिस प्रकार मित्र और वरुण न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ६॥

जिस प्रकार ब्रह्म और क्षत्र न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ७॥

जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्रियाँ न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ८॥

जिस प्रकार वीर और वीर्य न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ९॥

यथा प्राणश्चापानश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ १०॥
यथा मृत्युश्चामृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ ११॥
यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ १२॥
यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः॥ १३॥

[अथर्ववेद, पैप्पलादशाखा २। १५]

जिस प्रकार प्राण और अपान न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ १०॥

जिस प्रकार मृत्यु और अमृत न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ ११॥

जिस प्रकार सत्य और अनृत न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ १२॥

जिस प्रकार भूत और भव्य न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो॥ १३॥

शान्त्यध्याय

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम
प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ॥ १॥
यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ २॥
भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ३॥
कया नश्चित्रऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ ४॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु॥ ५॥

मैं ऋक्-रूप वाणीकी, यजुः-रूप मनकी, प्राणरूप सामकी और चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियकी शरण लेता हूँ। जिससे वाणी-बल, शारीरिक बल एवं प्राण तथा अपान मुझमें (स्थिररूपसे) रहें॥ १॥

मेरे चक्षुकी, हृदयकी तथा मनकी जो न्यूनता (दौर्बल्य) है, उसको देवगुरु (बृहस्पति) दूर करें। जो परमात्मा समस्त ब्रह्माण्डका स्वामी है, वह मेरे लिये सुखस्वरूप हो॥ २॥

आदित्यमण्डलस्थित सर्वान्तर्यामी परब्रह्मस्वरूप सवितृदेवके उस वरणीय (वरणयोग्य)-स्वरूपका हम ध्यान करते हैं, जो सवितृदेव हमारी बुद्धिको सत्कर्मकी ओर प्रेरित करते हैं॥ ३॥

सर्वदा वर्द्धनशील एवं आश्चर्यस्वरूप हे इन्द्र! तुम किस तर्पण, किस प्रीति अथवा किस यज्ञकर्मसे हमारे सहायक हो सकते हो?॥ ४॥

हे परमेश्वर! सोमरूप अन्नका वह कौन-सा भाग है, जो कि मादक हवियोंमें श्रेष्ठ है और जो आपको विशेष सन्तुष्ट करता है। आपकी जिस प्रसन्नतामें जो भक्त दृढ़तासे रहते हैं, उन्हें आप धन (विभाग करके) प्रदान करते हैं॥ ५॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतिभिः॥ ६ ॥
कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर॥ ७ ॥
इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ८ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥ ९ ॥
शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु॥ १०॥
अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥ ११ ॥

हे इन्द्र! जो तुम्हारी मित्ररूपमें स्तुति करते हैं, तुम उन भक्तोंकी रक्षाके लिये अनन्त रूप धारण करते हो॥ ६॥

हे इन्द्र! तुम किस स्तुतिरूप हविर्दानसे तृप्त होकर हमें आनन्दित करते हो तथा किस स्तुतिकर्ता यजमानको धन देते हो?॥ ७॥

जो परमेश्वर समस्त संसारके स्वामी हैं अथवा जो सूर्य समस्त संसारके प्रकाशक हैं, वह सूर्य हमारे द्विपद अर्थात् पुत्रादिकोंके लिये तथा चतुष्पद अर्थात् गौ आदि पशुओंके लिये कल्याणकारी हों॥ ८॥

मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विष्णु ये सभी देवगण हमारे लिये कल्याणकारी हों॥ ९॥

हमारे लिये वायु, सूर्य और वरुण कल्याणकारी हों अर्थात् वायु सुखस्वरूप बहे, सूर्य सुखप्रद किरणोंका प्रसार करें और वरुण सुवृष्टि प्रदान करें॥ १०॥

हमारे लिये दिन और रात्रि सुखस्वरूप हों तथा इन्द्राग्नी, इन्द्रवरुण, इन्द्रपूषा और इन्द्रसोम—ये सभी देवता हमारे लिये कल्याणकारी हों एवं हमारे रोग तथा भयको दूरकर सुखकारी हों॥ ११॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥ १२॥
स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥ १३॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ १४॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ १५॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥ १६॥
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।

प्रकाशमान जल हमारे अभिषेक अथवा अभीष्ट-सिद्धिके लिये सुखकर हो तथा हमारे रोग और भयका नाशक हो॥ १२॥

हे पृथिवि! तुम कण्टकहीन अर्थात् अकण्टकरूप पृथिवीमें निवासस्थान देकर हमें अपनी शरणमें लो॥ १३॥

हे जलसमूह! तुम [स्नान-पानादिके कारण] सुखके देनेवाले रसस्थापक हो और तुम अत्यन्त रमणीय एवं दर्शनीय हो॥ १४॥

हे जलसमूह! तुम्हारा जो सुखकारी शान्तमय रस है, उस रसका हमें भी भागी बनाओ। जिस प्रकार प्रेमसे माता अपने बालकोंको स्तनद्वारा दुग्धपान कराती हैं, उसी प्रकार हमें भी जल प्रदानकर अमृतरूपी मधुररसका पान कराओ॥ १५॥

हे जलसमूह! तुम सर्वदा समस्त लोकोंमें गमनशील हो; क्योंकि तुम्हारे ही निवाससे आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् जीवित है। अतः हमें भी अपने मधुर जलद्वारा प्रजोत्पादनके समर्थ करो॥ १६॥

द्युलोक (स्वर्गलोक)-रूपा शान्ति, अन्तरिक्ष (आकाश)-रूपा शान्ति, पृथिवीरूपा शान्ति, जलरूपा शान्ति, औषधरूपा शान्ति, वनस्पतिरूपा

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १७॥
दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ १८॥
दृते दृꣳह मा।
ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्॥ १९॥
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव॥ २०॥
नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥ २१॥

शान्ति, विश्वदेवरूपा शान्ति, ब्रह्म (वेद)-रूपा शान्ति, समस्त संसाररूपा शान्ति और जो स्वभावतः शान्ति है, वह शान्ति हमें प्राप्त हो॥ १७॥

हे परमेश्वर (हे महावीर)! तुम हमारी वृद्धावस्थाके कारण निर्बल शरीर होनेपर हमें बलवान् बनाओ। समस्त प्राणी हमको मित्रकी दृष्टिसे देखें और हम भी उन्हें मित्रकी दृष्टिसे देखें। परस्परमें मैत्रीभाव होनेसे हमलोग सबको मित्रकी दृष्टिसे देखेंगे॥ १८॥

हे भगवन् (हे वीर)! हमें दृढ़ करो। हम तुम्हारे दर्शनसे दीर्घजीवी होंगे, हम तुम्हारे दर्शनसे दीर्घजीवी होंगे॥ १९॥

हे अग्ने! तुम्हारे तेजको नमस्कार है। समस्त रसोंके संशोधन करनेवाले तुम्हारे तेजको नमस्कार है। समस्त पदार्थोंमें प्रकाश करनेवाले तुम्हारे तेजको नमस्कार है। तुम्हारी ज्वाला हमारे विरोधियोंके लिये क्लेश देनेवाली हो और हमारे लिये शान्त अर्थात् कल्याण देनेवाली हो॥ २०॥

हे भगवन् (महावीर)! विद्युत्-स्वरूप तुमको नमस्कार है। स्तनयित्नु-स्वरूप अर्थात् मेघस्वरूप तुमको नमस्कार है। जिस कारण तुम स्वर्ग जानेकी चेष्टा करते हो, तदर्थ तुमको नमस्कार है॥ २१॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ २२॥
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै
सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ २३॥
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम
शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ २४॥

[शुक्लयजुर्वेद ३६]

हे परमेश्वर (महावीर)! तुम जिन दुश्चरित्रोंको हमसे हटाकर सर्वदा उपकारकी चेष्टा करते हो, उनसे हमें भयमुक्त करो। तुम हमारी सन्तानोंको सुख दो और हमारे पशुओंको भी भयमुक्त करो॥ २२॥

हे परमेश्वर! जल और औषधियाँ हमारे लिये अच्छे मित्रकी तरह अवस्थित हों। जो हमसे द्वेष करते हैं अथवा हम जिनसे शत्रुता करते हैं, ऐसे हम दोनों (उभयपक्ष)-के लिये जल और औषधियाँ सुखरूपेण अवस्थित हों॥ २३॥

देवताओंके हितकारी अथवा प्रिय परमेश्वरका जो चक्षुभूत सूर्यका तेज पूर्वदिशामें उदित होता है, वह हमें जीवनपर्यन्त अव्याहत चक्षुसम्पन्न रखे, जिससे हम उन्हें भलीभाँति देख सकें। हम सौ वर्षपर्यन्त जीयें, सौ वर्षपर्यन्त सुनें और सौ वर्षपर्यन्त बोलें। हम सौ वर्षपर्यन्त दैन्य होकर न रहें अर्थात् हमें कभी किसीसे कुछ माँगना न पड़े। हम सौ वर्षसे भी अधिक जीवित रहें॥ २४॥

परिशिष्ट

वैदिक राष्ट्रगीत

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ (यजु० सं० २२।२२)

(अनुवाद)

भारतवर्ष हमारा प्यारा, अखिल विश्वसे न्यारा;
सब साधनसे रहे समुन्नत भगवन्! देश हमारा।
हों ब्राह्मण विद्वान् राष्ट्रमें ब्रह्मतेज-व्रत-धारी,
महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्य-प्रहारी।
गौएँ भी अति मधुर दुग्धकी रहें बहाती धारा॥सब.....॥ १॥
भारतमें बलवान् वृषभ हों, बोझ उठायें भारी;
अश्व आशुगामी हों, दुर्गम पथमें विचरणकारी।
जिनकी गति अवलोक लजाकर हो समीर भी हारा॥ सब.....॥ २॥
महिलाएँ हों सती सुन्दरी सद्गुणवती सयानी,
रथारूढ भारत-वीरोंकी करें विजय-अगवानी।
जिनकी गुण-गाथासे गुंजित दिग्-दिगन्त हो सारा॥ सब.....॥ ३॥
यज्ञ-निरत भारतके सुत हों, शूर सुकृत-अवतारी,
युवक यहाँके सभ्य सुशिक्षित सौम्य सरल सुविचारी,
जो होंगे इस धन्य राष्ट्रका भावी सुदृढ़ सहारा॥ सब.....॥ ४॥
समय-समयपर आवश्यकतावश रस घन बरसायें,
अन्नौषधमें लगें प्रचुर फल और स्वयं पक जायें।
योग हमारा, क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा॥ सब.....॥ ५॥

वैदिक सूक्ति-सुधा-सिन्धु

ऋग्वेदीय सूक्ति-सुधा

१-**न स सखा यो न ददाति सख्ये।** (१०।११७।४)

'वह मित्र ही क्या, जो अपने मित्रको सहायता नहीं देता।'

२-**सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्॥** (९।७३।१)

'धर्मात्माको सत्यकी नाव पार लगाती है।'

३-**स्वस्ति पन्थामनु चरेम।** (५।५१।१५)

'हे प्रभो! हम कल्याण-मार्गके पथिक बनें।'

४-**अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥** (१।९४।४)

'परमेश्वर! हम तेरे मित्रभावमें दुःखी और विनष्ट न हों।'

५-**शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥** (१०।१८।२)

'शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवनवाले हो।'

६-**सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुः।** (४।३३।६)

'पुरुषोंने सत्यका ही प्रतिपादन किया है और वैसा ही आचरण किया है।'

७-**सुगा ऋतस्य पन्थाः॥** (८।३१।१३)

'सत्यका मार्ग सुखसे गमन करनेयोग्य है, सरल है।'

८-**ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः॥** (९।७३।६)

'सत्यके मार्गको दुष्कर्मी पार नहीं कर पाते।'

९-**दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते।** (१।१२५।६)

'दानी अमरपद प्राप्त करते हैं।'

१०-**समाना हृदयानि वः।** (१०।१९१।४)

'तुम्हारे हृदय (मन) एक-से हों।'

११-**सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते।** (१०।१७।७)

'देवपदके अभिलाषी सरस्वतीका आह्वान करते हैं।'

१२-**उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः।** (१०।१०१।१)

'एक विचार और एक प्रकारके ज्ञानसे युक्त मित्रजनो उठो! जागो!!'

१३-**इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।** (८।२।१८)

'देवता यज्ञकर्ता, पुरुषार्थी तथा भक्तको चाहते हैं, आलसीसे प्रेम नहीं करते।'

१४-**यच्छा नः शर्म सप्रथः॥** (१।२२।१५)

'भगवन्! तुम हमें अनन्त अखण्डैकरसपरिपूर्ण सुखोंको प्रदान करो।'

१५-**सुम्नमस्मे ते अस्तु।** (१।११४।१०)

'हे परमात्मन्! हमारे अंदर तुम्हारा महान् (कल्याणकारी) सुख प्रकट हो।'

१६-**अस्य प्रियासः सख्ये स्याम॥** (४।१७।९)

'हम देवताओंसे प्रीतियुक्त मैत्री करें।'

१७-**पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥** (५।५१।१५)

'हम दानशील पुरुषसे, विश्वासघातादि न करनेवालेसे और विवेक-विचार-ज्ञानवान्‌से सत्संग करते रहें।'

१८-**जीवा ज्योतिरशीमहि॥** (७।३२।२६)

'हम जीवगण प्रभुकी कल्याणमयी ज्योतिको प्रतिदिन प्राप्त करें।'

१९-**भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।** (१०।२५।१)

'हे परमेश्वर! हम सबको कल्याणकारक मन, कल्याणकारक बल और कल्याणकारक कर्म प्रदान करो।'

यजुर्वेदीय सूक्ति-सूधा

१-**तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।** (३१।१९)

'उस परमात्मामें ही सम्पूर्ण लोक स्थित हैं।'

२-**अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्याः।** (२।१०)

'हमारी कामनाएँ सच्ची हों।'

३-**भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनम्।** (३०।१७)

'जागना (ज्ञान) ऐश्वर्यप्रद है। सोना (आलस्य) दरिद्रताका मूल है।'

४-**सं ज्योतिषाभूम॥** (२।२५)

'हम ब्रह्मज्ञानसे संयुक्त हों।'

५-**अगन्म ज्योतिरमृता अभूम।** (८।५२)

'हम तुम्हारी ज्योतिको प्राप्तकर मृत्युके भयसे मुक्त हों।'

६-**वैश्वानरज्योतिर्भूयासम्।** (२०।२३)

'मैं परमात्माकी महिमामयी ज्योतिको प्राप्त करूँ।'

७-**सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।** (२०।५१)

'सर्वज्ञ प्रभु हमारे लिये सुखकारी हों।'

८-**अप नः शोशुचदघम्॥** (३५।६)

'देवगण हमारे पापोंको भलीभाँति नष्ट कर दें।'

९-**स्योना पृथिवि नः।** (३५।२१)

'हे पृथिवी! तुम हमारे लिये सुख देनेवाली हो।'

१०-**इहैव रातयः सन्तु॥** (३८।१३)

'हमें अपने ही स्थानमें अनेक प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हों।'

११-**ब्रह्मणस्तन्वं पाहि।** (३८।१९)

'हे भगवन्! तुम ब्राह्मणके शरीरका पालन (रक्षण) करो।'

सामवेदीय सूक्ति-सुधा

१-**भद्रा उत प्रशस्तयः।** (१११)

'हमें कल्याणकारिणी स्तुतियाँ प्राप्त हों।'

२-**वि रक्षो वि मृधो जहि।** (१८६७)

'राक्षसों और हिंसक शत्रुओंका नाश करो।'

३-**जीवा ज्योतिरशीमहि।** (२५९)

'हम शरीरधारी प्राणी विशिष्ट ज्योतिको प्राप्त करें।'

४-**नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः॥** (५५५)

'हमारी देवविषयक स्तुतियाँ देवताओंको प्राप्त हों।'

५-**विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञम्।** (६१०)

'सम्पूर्ण देवगण मेरे मान करनेयोग्य पूजनको स्वीकार करें।'

६-**अहं प्रवदिता स्याम्॥** (६११)

'मैं सर्वत्र प्रगल्भतासे बोलनेवाला बनूँ।'

७-**यः सपर्यति तस्य प्राविता भव।** (८४५)

'जो तेरी पूजा करता है, उसका तू रक्षक हो।'

८-**मनौ अधि पवमानः राजा मेधाभिः अन्तरिक्षेण यातवे ईयते।** (८३३)

'मनुष्योंमें शुद्ध होनेवाला अपनी बुद्धिसे उच्च मार्गसे जानेकी कोशिश करता है।'

९-**जनाय उर्जं वरिवः कृधि।** (८४२)

'लोगोंमें श्रेष्ठ बल पैदा करो।'

१०-**पुरन्धिं जनय।** (८६१)

'बहुतसे उत्तम कर्म करनेमें समर्थ बुद्धिको उत्पन्न करो।'

११-**विचर्षणिः, अभिष्टिकृत्, इन्द्रियं हिन्वानः, ज्यायः, महित्वं आनशे।** (८३९)

'विशेष ज्ञानी और इष्टकी सिद्धि करनेवाला अपनी शक्तिको प्रयोगमें लाकर श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है।'

१२-**ऋतावृधौ ऋतस्पशौ बृहन्तं क्रतुं ऋतेन आशाथे।** (८४८)

'सत्य बढ़ानेवाले, सत्यको स्पर्श करनेवाले सत्यसे ही महान् कार्य करते हैं।'

१३-**यः सखा सुशेवः अद्वयुः।** (६४९)

'जो उत्तम मित्र, उत्तम प्रकारसे सेवाके योग्य तथा अच्छा व्यवहार करनेवाला है, वह उत्तम होता है।'

१४-**ईडेन्यः नमस्यः तमांसि तिरः दर्शतः वृषा अग्निः सं इध्यते।** (१५३८)

'जो प्रशंसनीय, नमस्कार करनेयोग्य, अन्धकारको दूर करनेवाला दर्शनीय और बलवान् है; उसका तेज बढ़ता है।'

अथर्ववेदीय सूक्ति-सुधा

१-**स एष एक एकवृदेक एव।** (१३।५।२०)

'वह ईश्वर एक और सचमुच एक ही है।'

२-**एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।** (२।२।१)

'एक परमेश्वर ही पूजाके योग्य और प्रजाओंमें स्तुत्य है।'

३-**तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः।** (१०।८।४४)

'उस आत्माको ही जान लेनेपर मनुष्य मृत्युसे नहीं डरता।'

४-**रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्॥** (७।११५।४)

'पुण्यकी कमाई मेरे घरकी शोभा बढ़ाये, पापकी कमाईको मैंने नष्ट कर दिया है।'

५-**मा जीवेभ्यः प्र मदः।** (८।१।७)

'प्राणियोंकी ओरसे बेपरवाह मत हो।'

६-**वयं सर्वेषु यशसः स्याम॥** (६।५८।२)

'हम समस्त जीवोंमें यशस्वी होवें।'

७-**उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।** (८।१।६)

'पुरुष! तुम्हें तेरे लिये ऊपर उठना चाहिये, न कि नीचे गिरना।'

८-**मा नो द्विक्षत कश्चन।** (१२।१।२४)

'हमसे कोई भी द्वेष करनेवाला न हो।'

९-**सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥** (३।३०।३)

'समान गति, समान कर्म, समान ज्ञान और समान नियमवाले बनकर परस्पर कल्याणयुक्त वाणीसे बोलो।'

१०-**मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युः।** (१७।१।२९)

'मुझे पाप और मौत न व्यापे।'

११-**अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्।** (६।७८।२)

'मनुष्य दुग्धादि पदार्थोंसे बढ़े और राज्यसे बढ़े।'

१२-**अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः॥** (५।३।५)

'हम शरीरसे नीरोग हों और उत्तम वीर बनें।'

१३-**सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम॥** (६।११७।३)

'हमलोग ऋणरहित होकर परलोकके सभी मार्गोंपर चलें।'

१४-**वाचा वदामि मधुमद्।** (१।३४।३)

'वाणीसे माधुर्ययुक्त ही बोलता हूँ।'

१५-**ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥** (१।३१।४)

'हम सूर्यको बहुत कालतक देखते रहें।'

१६-**मा पुरा जरसो मृथाः॥** (५।३०।१७)

'हे मनुष्य! तू बुढ़ापेसे पहले मत मर।'

१७-**शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।** (३।२४।५)

'सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे बाँटो।'

१८-**शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम्॥** (६।७१।३)

'मेरे लिये अन्न कल्याणकारी और स्वादिष्ट हो।'

१९-**शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥** (१।६।४)

'हमें वर्षाद्वारा प्राप्त जल सुख दे।'

२०-**पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम्॥** (२।१३।१)

'हे भगवन्! जिस प्रकार पिता अपने अपराधी पुत्रकी रक्षा करता है, उसी प्रकार आप भी इस (हमारे) बालककी रक्षा करें।'

२१-**विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान्।** (२।३५।४)

'हे विश्वकर्मन्! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी रक्षा करो।'

२२-**शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः॥** (३।१२।६)

'हम स्वभिलषित पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होकर सौ वर्षतक जीवित रहें।'

२३-**निर्दुरमण्य ऊर्जा मधुमती वाक्॥** (१६।२।१)

'हमारी शक्तिशालिनी मीठी वाणी कभी भी दुष्ट स्वभाववाली न हो।'

वैदिक मन्त्रसुधा

ऋग्वेदीय मन्त्रसुधा

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीते-नाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु। तद् वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!! (ऋग्वेद, शान्तिपाठ)

मेरी वाणी मनमें और मन वाणीमें प्रतिष्ठित हो। हे ईश्वर! आप मेरे समक्ष प्रकट हों। हे मन और वाणी! मुझे वेदविषयक ज्ञान दो। मेरा ज्ञान क्षीण नहीं हो। मैं अनवरत अध्ययनमें लगा रहूँ। मैं श्रेष्ठ शब्द बोलूँगा, सदा सत्य बोलूँगा, ईश्वर मेरी रक्षा करें। वक्ताकी रक्षा करें। मेरे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध ताप शान्त हों।

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति। दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः।

(ऋग्वेद ३।७।५)

जिनकी वाणी महिमाके कारण मान्य और प्रशंसनीय है, वे ही सुखकी वृष्टि करनेवाले अहिंसाके धनको जानते हैं तथा महत्के शासनमें आनन्द प्राप्त करते हैं और दिव्य कान्तिसे देदीप्यमान होते हैं।

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः। पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम्॥ (ऋग्वेद ३।८।५)

जिस व्यक्तिने जन्म लिया है, वह जीवनको सुन्दर बनानेके लिये उत्पन्न हुआ है। वह जीवन-संग्राममें लक्ष्य-साधनके हेतु अध्यवसाय करता है। धीर व्यक्ति अपनी मननशक्तिसे कर्मोंको पवित्र करते हैं और विप्रजन दिव्य भावनासे वाणीका उच्चारण करते हैं।

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद् देवासश्चिद् यमीधिरे।
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावसुम्॥

(ऋग्वेद ५।२५।२)

सत्य वही है जो उज्ज्वल है, वाणीको प्रसन्न करता है और जिसे पूर्वकालमें हुए विद्वान् उज्ज्वल प्रकाशसे प्रकाशित करते हैं।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥

(ऋग्वेद ७।१०४।१२)

उत्तम ज्ञानके अनुसन्धानकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके सामने सत्य और असत्य दोनों प्रकारके वचन परस्पर स्पर्धा करते हुए उपस्थित होते हैं। उनमेंसे जो सत्य है, वह अधिक सरल है। शान्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति उसे चुन लेता है और असत्यका परित्याग करता है।

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः॥

(ऋग्वेद १०।३७।२)

वह सत्य-कथन सब ओरसे मेरी रक्षा करे, जिसके द्वारा दिन और रात्रिका सभी दिशामें विस्तार होता है तथा यह विश्व अन्यमें निविष्ट होता है, जिसकी प्रेरणासे सूर्य उदित होता है एवं निरन्तर जल बहता है।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत्॥

(ऋग्वेद ७।३२।१३)

यज्ञ-भावनासे भावित सदाचारीको भली प्रकारसे विवेचित, सुन्दर आकृतिसे युक्त, उच्च विचार (मन्त्र) दो। जो इन्द्रके निमित्त कर्म करता है, उसे पूर्वजन्मके बन्धन छोड़ देते हैं।

**त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्धय१र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन्।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत्॥**

(ऋग्वेद ३।२६।८)

मनुष्य या साधक हृदयसे ज्ञान और ज्योतिको भली प्रकार जानते हुए तीन पवित्र उपायों (यज्ञ, दान और तप अथवा श्रवण, मनन और निदिध्यासन)-से आत्माको पवित्र करता है। अपने सामर्थ्यसे सर्वश्रेष्ठ रत्न 'ब्रह्मज्ञान'को प्राप्त कर लेता है और तब वह इस संसारको तुच्छ दृष्टिसे देखता है।

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि। पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे॥

(ऋग्वेद १०।१३४।७)

हे देवो! न तो हम हिंसा करते हैं, न विद्वेष उत्पन्न करते हैं; अपितु वेदके अनुसार आचरण करते हैं। तिनके-जैसे तुच्छ प्राणियोंके साथ भी मिलकर कार्य करते हैं।

**यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥**

(ऋग्वेद १०।७१।६)

जो मनुष्य सत्य-ज्ञानका उपदेश देनेवाले मित्रका परित्याग कर देता है, उसके वचनोंको कोई नहीं सुनता। वह जो कुछ सुनता है, मिथ्या ही सुनता है। वह सत्कार्यके मार्गको नहीं जानता।

**स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥**

(ऋग्वेद १०।११७।३)

अन्नकी कामना करनेवाले निर्धन याचकको जो अन्न देता है, वही वास्तवमें भोजन करता है। ऐसे व्यक्तिके पास पर्याप्त अन्न रहता है और समय पड़नेपर बुलानेसे, उसकी सहायताके लिये तत्पर अनेक मित्र उपस्थित हो जाते हैं।

**पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयां-
समनु पश्येत पन्थाम्।**

(ऋग्वेद १०।११७।५)

मनुष्य अपने सम्मुख जीवनका दीर्घ पथ देखे और याचना करनेवालेको दान देकर सुखी करे।

**ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः।
अप द्वेषो अप ह्वरो ऽन्यव्रतस्य सश्चिरे॥**

(ऋग्वेद ५।२०।२)

वास्तवमें 'वृद्ध' तो वे हैं, जो विचलित नहीं होते और अति प्रबल नास्तिककी द्वेषभावनाको एवं उसकी कुटिलताको दूर करते हैं।

**श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥**

(ऋग्वेद १०।१५१।१)

श्रद्धासे अग्निको प्रज्वलित किया जाता है, श्रद्धासे ही हवनमें आहुति दी जाती है; हम सब प्रशंसापूर्ण वचनोंसे श्रद्धाको श्रेष्ठ ऐश्वर्य मानते हैं।

**स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥** (ऋग्वेद १।१।९)

जिस प्रकार पिता अपने पुत्रके कल्याणकी कामनासे उसे सरलतासे प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे अग्नि! तुम हमें सुखदायक उपायोंसे प्राप्त हो। हमारा कल्याण करनेके लिये हमारा साथ दो।

**सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे।
अप नः शोशुचदघम्॥** (ऋग्वेद १।९७।२)

सुशोभन क्षेत्रके लिये, सन्मार्गके लिये और ऐश्वर्यको प्राप्त करनेके लिये हम आपका यजन करते हैं। हमारा पाप विनष्ट हो।

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये।
अप नः शोशुचदघम्॥

(ऋग्वेद १।९७।८)

जैसे सागरको नौकाके द्वारा पार किया जाता है, वैसे ही वह परमेश्वर हमारा कल्याण करनेके लिये हमें संसार-सागरसे पार ले जाय। हमारा पाप विनष्ट हो।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥

(ऋग्वेद ५।५१।१२)

हम अपना कल्याण करनेके लिये वायुकी उपासना करते हैं, जगत्के स्वामी सोमकी स्तुति करते हैं और अपने कल्याणके लिये हम सभी गणोंसहित बृहस्पतिकी स्तुति करते हैं। आदित्य भी हमारा कल्याण करनेवाले हों।

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥

(ऋग्वेद ६।५१।१६)

हम उस कल्याणकारी और निष्पाप मार्गका अनुसरण करें, जिससे मनुष्य सभी द्वेष-भावनाओंका परित्याग कर देता है और सम्पत्तिको प्राप्त करता है।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥

(ऋग्वेद ७।३५।४)

ज्योति ही जिसका मुख है, वह अग्नि हमारे लिये कल्याणकारक हो; मित्र, वरुण और अश्विनीकुमार हमारे लिये कल्याणप्रद हों; पुण्यशाली व्यक्तियोंके कर्म हमारे लिये सुख प्रदान करनेवाले हों तथा वायु भी हमें शान्ति प्रदान करनेके लिये बहे।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥

(ऋग्वेद ७।३५।५)

द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिये सुखकारक हों, अन्तरिक्ष हमारी दृष्टिके लिये कल्याणप्रद हो, ओषधियाँ एवं वृक्ष हमारे लिये कल्याणकारक हों तथा लोकपति इन्द्र भी हमें शान्ति प्रदान करें।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

(ऋग्वेद ७।३५।८)

विस्तृत तेजसे युक्त सूर्य हम सबका कल्याण करता हुआ उदित हो। चारों दिशाएँ हमारा कल्याण करनेवाली हों। अटल पर्वत हम सबके लिये कल्याणकारक हों। नदियाँ हमारा हित करनेवाली हों और उनका जल भी हमारे लिये कल्याणप्रद हो।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥

(ऋग्वेद ७।३५।९)

अदिति हमारे लिये कल्याणप्रद हों, मरुद्गण हमारा कल्याण करनेवाले हों। विष्णु और पुष्टिदायक देव हमारा कल्याण करें तथा जल एवं वायु भी हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥

(ऋग्वेद ७।३५।१०)

रक्षा करनेवाले सविता हमारा कल्याण करें, सुशोभित होती हुई उषादेवी हमें सुख प्रदान करें, वृष्टि करनेवाले पर्जन्यदेव हमारी प्रजाओंके लिये कल्याणकारक हों और क्षेत्रपति शम्भु भी हम सबको शान्ति प्रदान करें।

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।

(ऋग्वेद ७।३५।११)

सभी देवता हमारा कल्याण करनेवाले हों, बुद्धि प्रदान करनेवाली देवी सरस्वती भी हम सबका कल्याण करें।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥

(ऋग्वेद ८।९८।११)

हे आश्रयदाता! तुम ही हमारे पिता हो। हे शतक्रतु! तुम हमारी माता हो। हम तुमसे कल्याणकी कामना करते हैं।

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः॥

(ऋग्वेद १०।१८।३)

ये जीव मृत व्यक्तियोंसे घिरे हुए नहीं हैं, इसीलिये आज हमारा कल्याण करनेवाला देवयज्ञ सम्पूर्ण हुआ। नृत्य करनेके लिये, आनन्द मनानेके लिये दीर्घ आयुको और अधिक दीर्घ करते हुए उन्नति-पथपर अग्रसर हों।

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।

(ऋग्वेद १०।२५।१)

हे परमेश्वर! हमें कल्याणकारक मन, कल्याण करनेका सामर्थ्य और कल्याणकारक कार्य करनेकी प्रेरणा दें।

यजुर्वेदीय मन्त्रसुधा

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ (यजुर्वेद १।५)

हे व्रतरक्षक अग्नि! मैं सत्यव्रती होना चाहता हूँ। मैं इस व्रतको कर सकूँ। मेरा व्रत सिद्ध हो। मैं असत्यको त्याग करके सत्यको स्वीकार करता हूँ।

**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥**

(यजुर्वेद १९। ३०)

व्रतसे दीक्षाकी प्राप्ति होती है और दीक्षासे दाक्षिण्य की, दाक्षिण्यसे श्रद्धा उपलब्ध होती है और श्रद्धासे सत्यकी उपलब्धि होती है।

**अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥**

(यजुर्वेद ५। ३६)

हे अग्नि! हमें आत्मोत्कर्षके लिये सन्मार्गमें प्रवृत्त कीजिये। आप हमारे सभी कर्मोंको जानते हैं। कुटिलतापूर्ण पापाचरणसे हमारी रक्षा कीजिये। हम आपको बार-बार प्रणाम करते हैं।

**दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥**

(यजुर्वेद ३६। १८)

मेरी दृष्टिको दृढ कीजिये; सभी प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें; मैं भी सभी प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूँ; हम परस्पर एक-दूसरेको मित्रकी दृष्टिसे देखें।

**सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः
शान्तिः शान्तिः।** (कृष्णयजुर्वेदीय शान्तिपाठ)

हम दोनों साथ-साथ रक्षा करें, एक साथ मिलकर पालन-पोषण करें, साथ-ही-साथ शक्ति प्राप्त करें। हमारा अध्ययन तेजसे परिपूर्ण हो। हम कभी परस्पर विद्वेष न करें। हे ईश्वर! हमारे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—त्रिविध तापोंकी निवृत्ति हो।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥

(यजुर्वेद ३५। २१)

हे पृथ्वी! सुखपूर्वक बैठनेयोग्य होकर तुम हमारे लिये शुभ हो, हमें कल्याण प्रदान करो। हमारा पाप विनष्ट हो जाय।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥

(यजुर्वेद ३६। २)

जो मेरे चक्षु और हृदयका दोष हो अथवा जो मेरे मनकी बड़ी त्रुटि हो, बृहस्पति उसको दूर करें। जो इस विश्वका स्वामी है, वह हमारे लिये कल्याणकारक हो।

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (यजुर्वेद ३६। ३)

सत्, चित्, आनन्दस्वरूप और जगत्के स्रष्टा ईश्वरके सर्वोत्कृष्ट तेजका हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धिको शुभ प्रेरणा दें।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ (यजुर्वेद ३६। १७)

द्युलोक शान्त हो; अन्तरिक्ष शान्त हो, पृथ्वी शान्त हो, जल शान्त हो, ओषधियाँ शान्त हों, वनस्पतियाँ शान्त हों, समस्त देवता शान्त हों, ब्रह्म शान्त हों, सब कुछ शान्त हो, शान्त-ही-शान्त हो और मेरी वह शान्ति निरन्तर बनी रहे।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥

(यजुर्वेद ३६। २२)

जहाँ-जहाँसे आवश्यक हो, वहाँ-वहाँसे ही हमें अभय प्रदान करो। हमारी प्रजाके लिये कल्याणकारक हो और हमारे पशुओंको भी अभय प्रदान करो।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजुर्वेद ३६। २४)

ज्ञानी पुरुषोंका कल्याण करनेवाला, तेजस्वी ज्ञान-चक्षु-रूपी सूर्य सामने उदित हो रहा है, उसकी शक्तिसे हम सौ वर्षतक देखें, सौ वर्षका जीवन जियें, सौ वर्षतक सुनते रहें, सौ वर्षतक बोलें, सौ वर्षतक दैन्यरहित होकर रहें और सौ वर्षसे भी अधिक जियें।

सामवेदीय मन्त्रसुधा

शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥

(सामवेद १। ३। १३)

दिव्य-गुण-युक्त जल अभीष्टकी प्राप्ति और पीनेके लिये कल्याण करनेवाला हो तथा सभी ओरसे हमारा मङ्गल करनेवाला हो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

(सामवेद २१। ३। ९)

विस्तृत यशवाले इन्द्र हमारा कल्याण करें, सर्वज्ञ पूषा हम सबके लिये कल्याणकारक हों, अनिष्टका निवारण करनेवाले गरुड हम सबका कल्याण करें और बृहस्पति भी हम सबके लिये कल्याणप्रद हों।

चन्द्रमा अप्स्वाऽ३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥

(सामवेद पूर्वा० २।३१।९)

अन्तरिक्षवासी चन्द्रमा अपनी श्रेष्ठ किरणोंसहित आकाशमें गतिशील है। हे विद्युत्‌रूप स्वर्णमयी सूर्यकी रश्मियों! आपके चरणरूपी अग्रभागको हमारी इन्द्रियाँ पकड़नेमें समर्थ नहीं हैं। हे द्यावापृथिवि! मेरी स्तुतियोंको स्वीकार करें। रात्रिमें सूर्यका प्रकाश आकाशमें संचरित रहता है; किंतु हमारी इन्द्रियाँ उसे अनुभव नहीं कर पातीं। चन्द्रमाके माध्यमसे ही प्रकाश मिलता है।

अथर्ववेदीय मन्त्रसुधा

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥

(अथर्ववेद १।३४।२)

मेरी जिह्वाके अग्रभागमें माधुर्य हो। मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता हो। मेरे कर्ममें माधुर्यका निवास हो और हे माधुर्य! मेरे हृदयतक पहुँचो।

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥

(अथर्ववेद १।३४।३)

मेरा जाना मधुरतासे युक्त हो। मेरा आना माधुर्यमय हो। मैं मधुर वाणी बोलूँ और मैं मधुर आकृतिवाला हो जाऊँ।

प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥

(अथर्ववेद ११।४।११)

प्राण सत्य बोलनेवालेको श्रेष्ठ लोकमें प्रतिष्ठित करता है।

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम्॥

(अथर्ववेद १६।२।४)

शुभ और शिव-वचन सुननेवाले कानोंसे युक्त मैं केवल कल्याणकारी वचनोंको ही सुनूँ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥

(अथर्ववेद ३।३०।५)

वृद्धोंका सम्मान करनेवाले, विचारशील, एकमतसे कार्यसिद्धिमें संलग्न, समान धुरवाले होकर विचरण करते हुए तुम विलग मत होओ। परस्पर मधुर सम्भाषण करते हुए आओ। मैं तुम्हें एकगति और एकमतिवाला करता हूँ।

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥

(अथर्ववेद ३।३०।७)

समानगति और उत्तम मनसे युक्त आप सबको मैं उत्तम भावसे समान खान-पानवाला करता हूँ। अमृतकी रक्षा करनेवाले देवोंके समान आपका प्रातः और सांय कल्याण हो।

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि॥

(अथर्ववेद ३।२८।३)

(हे नववधू!) पुरुषोंके लिये, गायोंके लिये और अश्वोंके लिये कल्याणकारी हो। सब स्थानोंके लिये कल्याण करनेवाली हो तथा हमारे लिये भी कल्याणमय होती हुई यहाँ आओ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

(अथर्ववेद ३।३०।२)

पुत्र पिताके अनुकूल उद्देश्यवाला हो। पत्नी पतिके प्रति मधुर और शान्ति प्रदान करनेवाली वाणी बोले।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

(अथर्ववेद ३।३०।३)

भाई-भाईके साथ द्वेष न करे। बहन-बहनसे विद्वेष न करे। समान गति और समान नियमवाले होकर कल्याणमयी वाणी बोलो।

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥

(अथर्ववेद १४।१।४३)

जिस प्रकार समर्थ सागरने नदियोंका साम्राज्य उत्पन्न किया है, उसी प्रकार पतिके घर जाकर तुम भी सम्राज्ञी बनो।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्वाः॥

(अथर्ववेद १४।१।४४)

ससुरकी सम्राज्ञी बनो, देवरोंके मध्य भी सम्राज्ञी बनकर रहो, ननद और सासकी भी सम्राज्ञी बनो।

सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति॥

(अथर्ववेद ९।६।२६)

जिसके अन्नमें अन्य व्यक्ति भाग नहीं लेते, वह सब पापोंसे मुक्त नहीं होता।

हिरण्यस्त्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्।
गृहे वसतु नोऽतिथिः॥ (अथर्ववेद १०।६।४)

स्वर्णकी माला पहननेवाला, मणिस्वरूप यह अतिथि श्रद्धा, यज्ञ और महनीयताको धारण करता हुआ हमारे घरमें निवास करे।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् .....॥ (अथर्ववेद १५।१०।१-२)

ज्ञानी और व्रतशील अतिथि जिस राजाके घर आ जाय, उसे इसको अपना कल्याण समझना चाहिये।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥

(अथर्ववेद ४।२१।३)

मनुष्य जिन वस्तुओंसे देवताओंके हेतु यज्ञ करता है अथवा जिन पदार्थोंको दान करता है, वह उनसे संयुक्त ही हो जाता है; क्योंकि न तो वे पदार्थ नष्ट होते हैं, न ही उन्हें चोर चुरा सकता है और न ही कोई शत्रु उन्हें बलपूर्वक छीन सकता है।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥

(अथर्ववेद १।३१।४)

हमारे माता-पिताका कल्याण हो। गायों, सम्पूर्ण संसार और सभी मनुष्योंका कल्याण हो। सभी कुछ सुदृढ़ सत्ता, शुभ ज्ञानसे युक्त हो तथा हम चिरन्तन कालतक सूर्यको देखें।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः॥

(अथर्ववेद ६।४५।१)

हे मेरे मनके पाप-समूह! दूर हो जाओ। अप्रशस्तकी कामना क्यों करते हो? दूर हटो, मैं तुम्हारी कामना नहीं करता। वृक्षों तथा वनोंके साथ रहो, मेरा मन घर और गायोंमें लगे।

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः॥

(अथर्ववेद १९।९।३)

ब्रह्माद्वारा परिष्कृत यह परमेष्ठीकी वाणीरूपी सरस्वतीदेवी, जिसके द्वारा भयंकर कार्य किये जाते हैं, वही हमें शान्ति प्रदान करनेवाली हो।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥

(अथर्ववेद ११।९।४)

परमेष्ठी ब्रह्माद्वारा तीक्ष्ण किया गया यह आपका मन, जिसके द्वारा घोर पाप किये जाते हैं, वही हमें शान्ति प्रदान करें।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः॥

(अथर्ववेद ११।९।५)

ब्रह्माके द्वारा सुसंस्कृत ये जो पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन, जिनके द्वारा घोर कर्म किये जाते हैं, उन्हींके द्वारा हमें शान्ति मिले।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः॥

(अथर्ववेद ११।९।७)

मित्र हमारा कल्याण करे; वरुण, सूर्य और यम हमारा कल्याण करें; पृथ्वी एवं आकाशमें होनेवाले अनिष्ट हमें सुख देनेवाले हों तथा स्वर्गमें विचरण करनेवाले ग्रह भी हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों।

पश्येम शरदः शतम्॥ जीवेम शरदः शतम्॥ बुध्येम शरदः शतम्॥ रोहेम शरदः शतम्॥ पूषेम शरदः शतम्॥ भवेम शरदः शतम्॥ भूयेम शरदः शतम्॥ भूयसीः शरदः शतात्॥ (अथर्ववेद १९।६७।१—८)

हम सौ वर्षतक देखते रहें। सौ वर्षतक जियें, सौ वर्षतक ज्ञान प्राप्त करते रहें, सौ वर्षतक उन्नति करते रहें, सौ वर्षतक हृष्ट-पुष्ट रहें, सौ वर्षतक शोभा प्राप्त करते रहें और सौ वर्षसे भी अधिक आयुका जीवन जियें।

वैदिक दीक्षान्त-उपदेश

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति।

वेद-विद्या पढ़ा देनेके पश्चात् आचार्य शिष्यको उपदेश करता है, दीक्षान्त-भाषण देता हुआ कहता है—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकꣳसुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन

तुम सत्य बोलना। धर्माचरण करना। स्वाध्यायसे प्रमाद न करना। आचार्यको जो प्रिय हो, उसे दक्षिणा-रूपमें देकर गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करना और संततिके सूत्रको न तोड़ना। सत्य बोलनेसे प्रमाद न करना। धर्मपालनमें प्रमाद न करना। जिससे तुम्हारा कल्याण होता हो, उसमें प्रमाद न करना। अपना वैभव बढ़ानेमें प्रमाद न करना। स्वाध्याय और प्रवचनद्वारा अपने ज्ञानको बढ़ाते रहना, देवों और पितरोंके प्रति तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे सदा ध्यानमें रखना।

माताको, पिताको, आचार्यको और अतिथिको देवस्वरूप मानना, उनके प्रति पूज्य-बुद्धि रखना। हमारे जो कर्म अनिन्दित हैं, उन्हींका स्मरण रखना, दूसरोंका नहीं। जो हमारे सदाचार हैं, उन्हींकी उपासना करना, दूसरोंकी नहीं।

हमसे श्रेष्ठ विद्वान् जहाँ बैठे हों, उनके प्रवचनको ध्यानसे सुनना,

प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः।

अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः।

एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।

[कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद्]

उनका यथेष्ट आदर करना। दूसरोंकी जो भी सहायता करना, वह श्रद्धापूर्वक करना, किसीको वस्तुं अश्रद्धासे न देना। प्रसन्नताके साथ देना, नम्रतापूर्वक देना, भयसे भी देना और प्रेमपूर्वक देना।

ऐसा करते हुए भी यदि तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्यमें संशय पैदा हो जाय, यह समझमें न आये कि धर्माचार क्या है तो जो विचारवान् तपस्वी, कर्तव्यपरायण, शान्त और सरस स्वभाववाले विद्वान् हों, उनके पास जाकर अपना समाधान कर लेना और जैसा वे बर्ताव करते हों, वैसा बर्ताव करना।

किसी दोषसे लांछित मनुष्योंके साथ बर्ताव करनेमें जो वहाँ उत्तम विचारवाले, परामर्श देनेमें कुशल, सब प्रकारसे यथायोग्य सत्कर्म और सदाचारमें लगे हुए, रूखेपनसे रहित धर्मके अभिलाषी विद्वान् हों, वे जिस प्रकार उनके साथ बर्ताव करें, उनके साथ तुमको भी वैसा व्यवहार करना चाहिये।

यही आदेश है। यही उपदेश है। यही वेद और उपनिषद्का सार है। यही हमारी शिक्षा है। इसके अनुसार ही अपने जीवनमें आचरण करना।

वैदिक शान्तिपाठसंग्रह

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥ [कृष्णयजुर्वेदीय]

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ २॥ [कृष्णयजुर्वेदीय]

ॐ मित्र हमारे लिये सुख करनेवाले हों। वरुण हमारे लिये सुख करनेवाले हों। अर्यमा हमारे लिये सुख करनेवाले हों। इन्द्र और बृहस्पति हमारे लिये सुख करनेवाले हों। जिसका पादविक्षेप (डग) बहुत बड़ा है, वे विष्णु हमारे लिये सुख करनेवाले हों। ब्रह्मको नमस्कार है। हे वायो! तुम्हें नमस्कार है। तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम्हींको मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। तुम्हींको ऋत (शास्त्रोक्त निश्चित अर्थ) कहूँगा। तुम्हींको सत्य कहूँगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे। वह आचार्यकी रक्षा करे। रक्षा करे मेरी। रक्षा करे आचार्यकी। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः**। [दिन के अभिमानी देवताका नाम मित्र है, रात्रिके अभिमानी देवताका नाम वरुण है, सूर्यमण्डल और नेत्रके अभिमानी देवताका नाम अर्यमा है, हाथ और बलके देवता इन्द्र हैं, वाणी और बुद्धिके देवता बृहस्पति हैं, पदोंके देवता विष्णु हैं, सूत्रात्मक वायुका नाम यहाँपर ब्रह्म है और प्राणका नाम वायु है]॥ १॥

ॐ वह प्रसिद्ध परमेश्वर हम शिष्य और आचार्य दोनोंकी साथ-साथ रक्षा करे। हम दोनोंको साथ-साथ विद्याके फलका भोग कराये। हम दोनों एक साथ मिलकर वीर्य यानी विद्याकी प्राप्तिके लिये सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनोंका पढ़ा हुआ तेजस्वी हो, हम दोनों परस्पर द्वेष न करें। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ २॥**

ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्य-
मृतात्संबभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव
धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे
मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि
मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय। ॐ शान्तिः शान्तिः
शान्तिः॥ ३॥ [कृष्णयजुर्वेदीय]

ॐ अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव।
ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणꣳसवर्चसम्।
सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्। ॐ
शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ४॥ [कृष्णयजुर्वेदीय]

ॐ जो प्रणव छन्दोंमें श्रेष्ठ हैं, सर्वरूप है, अमृतरूप वेदोंसे प्रधानरूपसे आविर्भूत हुआ है, वह प्रणव—ॐकाररूप इन्द्र (परमेश्वर) मुझे बुद्धिसे पुष्ट करे अर्थात् मुझको बुद्धिका बल दे। हे देव! मैं अमृत (ब्रह्मज्ञान)-का धारण करनेवाला होऊँ। मेरा शरीर समर्थ (रोगरहित) रहे। मेरी जिह्वा मधुरभाषिणी हो, कानोंसे मैं बहुत सुनूँ। तुम ब्रह्मके कोश हो। लौकिक बुद्धिसे ढके हुए हो। जो कुछ मैंने सुना है, उसकी रक्षा करो। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ३॥**

ॐ कटना या नष्ट हो जाना जिसका स्वभाव है, उस संसाररूप वृक्षका मैं अन्तर्यामीरूपसे प्रेरक हूँ, मेरी कीर्ति पर्वत-शिखरके समान उच्च है। मैं ऊर्ध्वपवित्र हूँ अर्थात् पवित्र—परब्रह्म मेरा ऊर्ध्व—कारण है। अन्नयुक्त सूर्यमें जिस प्रकार अमृत है, उसी प्रकार मैं भी शुद्ध अमृतमय हूँ। प्रकाशमान धन हूँ। सुन्दर बुद्धिवाला, मृत्युरहित और अक्षय (अविनाशी) हूँ। ये वचन वेदके जाननेके पश्चात् त्रिशंकुके कहे हुए हैं। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ४॥**

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ५॥ [शुक्लयजुर्वेदीय]

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरण-मस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ६॥ [सामवेदीय]

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता। मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु

ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है, यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है; क्योंकि पूर्णसे पूर्ण ही निकलता है, (प्रलयकालमें) पूर्ण (कार्यब्रह्म)-का पूर्णत्व लेकर पूर्ण (परब्रह्म) ही शेष रहता है। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ५॥**

ॐ मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, बल और सब इन्द्रियाँ पुष्ट हों। सब उपनिषद्वेद्य ब्रह्म है। मैं ब्रह्मका तिरस्कार न करूँ, ब्रह्म मेरा तिरस्कार न करे, हम दोनोंकी परस्पर प्रीति हो, परस्पर प्रीति हो, वेदान्तोंमें प्रकाशित किये हुए जो धर्म हैं, ब्रह्मात्मामें निरन्तर प्रेम करनेवाले मुझमें हों, मुझमें वे हों। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ ६॥**

ॐ मेरी वाणी मनमें प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणीमें प्रतिष्ठित हो। हे स्वप्रकाश ब्रह्म चैतन्यात्मन्! मेरे लिये अविद्या दूर करनेको आप प्रकट हों, वेदका तत्त्व मेरे लिये लाइये। मेरा सुना हुआ मुझे न छोड़े। इस पढ़े हुएको मैं दिन-रात धारण करूँ। परमार्थमें सत्य बोलूँ। व्यवहारमें सत्य बोलूँ। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे, वह आचार्यकी रक्षा करे। रक्षा करे मेरी,

वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ७ ॥

[ऋग्वेदीय]

ॐ भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ८ ॥ [ऋग्वेदीय]

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ९ ॥

[अथर्ववेदीय]

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तꣳ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १० ॥ [कृष्णयजुर्वेदीय]

रक्षा करे आचार्यकी, रक्षा करे आचार्यकी। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ७ ॥**

ॐ हमारा कल्याण हो, मन पवित्र कीजिये। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ८ ॥**

ॐ हे देवगण! हम कानोंसे कल्याणरूप वचन सुनें। यजन करनेमें समर्थ होकर हम नेत्रोंसे शुभ-दर्शन करें। सुदृढ़ अंगों (अवयवों) एवं शरीरोंसे स्तवन करनेवाले हमलोग देवताओंके लिये हितकर आयुका उपभोग करें। महान् कीर्तिवाला इन्द्र हमारा कल्याण करे। विश्वका जाननेवाला सूर्य हमारा कल्याण करे। आपत्तियोंके लिये चक्रके समान घातक गरुड हमारा कल्याण करे। बृहस्पति हमारा कल्याण करे। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ९ ॥**

ॐ जो पूर्वमें ब्रह्माको उत्पन्न करता है और जो उसके लिये वेदोंको देता है, आत्मबुद्धिके प्रकाशक उस प्रसिद्ध देवकी शरणमें मैं मोक्षकी इच्छासे जाता हूँ। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १० ॥**

चतुर्वेद-ध्यान

ऋग्वेद-ध्यान

ऋग्वेदः श्वेतवर्णः स्याद् द्विभुजो रासभाननः।
अक्षमालायुतः सौम्यः प्रीतश्चाध्ययनोद्यतः॥

भगवान् ऋग्वेद श्वेत वर्णवाले हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं और मुखाकृति गर्दभके समान है। वे अक्षमालासे समन्वित, सौम्य स्वभाववाले, प्रसन्न रहनेवाले तथा सदा अध्ययनमें निरत रहनेवाले हैं।

यजुर्वेद-ध्यान

अजास्यः पीतवर्णः स्याद्यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृक्।
वामे कुलिशपाणिस्तु भूतिदो मङ्गलप्रदः॥

भगवान् यजुर्वेद बकरेके समान मुखवाले, पीतवर्णवाले तथा अक्षमाला धारण करनेवाले हैं। वे अपने बायें हाथमें वज्र धारण किये हैं। वे सभी प्रकारका ऐश्वर्य तथा मंगल प्रदान करनेवाले हैं।

सामवेद-ध्यान

नीलोत्पलदलाभासः सामवेदो हयाननः।
अक्षमालान्वितो दक्षे वामे कम्बुधरः स्मृतः॥

जो नीलकमलदलके समान कान्तिवाले हैं, अश्वके समान मुखवाले हैं तथा जो अपने दाहिने हाथमें अक्षमाला लिये हुए हैं और बायें हाथमें शंख धारण किये हैं, वे सामवेदभगवान् कहे गये हैं।

अथर्ववेद-ध्यान

अथर्वणाभिधो वेदो धवलो मर्कटाननः।
अक्षसूत्रं च खट्वाङ्गं बिभ्राणो यजनप्रियः॥

जो उज्ज्वल वर्णवाले तथा बन्दरके समान मुखवाले हैं, जिन्होंने अक्षमाला और खट्वांग धारण किया है, जिन्हें यजनकर्म अत्यन्त प्रिय है, वे अथर्वण नामके वेदभगवान् कहे गये हैं।